बड़ी दीदी

मूल-लेखक

श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

पं० रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथमावृत्ति] सं० १९८२ वि० [मूल्य १) रु०

बड़ी दीदी

१

दुनिया में एक ऐसे लोगों का दल है, जो फूस की आग कहे जा सकते हैं। वे चटपट जल उठते और जल्दी-से बुझ भी सकते हैं। उनके पीछे हर घड़ी एक ऐसे आदमी के रहने की ज़रूरत रहती है, जो आवश्यकता के अनुसार फूस डालता रहे—उन्हें उसकाता रहे।

गृहस्थ-परिवार की लड़कियाँ मिट्टी का चिराग़ सजाते समय जैसे उसमें तेल और बत्ती डालती हैं, वैसे ही उसमें एक तीली भी रख देती हैं। चिराग़ की लौ जब घटने लगती है तब उस मामूली तीली की बड़ी ज़रूरत होती है। उसी से बत्ती उसकाई जाती है। उसके बिना तेल और बत्ती मौजूद रहने पर भी चिराग़ बराबर जलता नहीं रहता।

सुरेन्द्रनाथ की प्रकृति भी कुछ-कुछ इसी तरह की थी। उसमें बल, बुद्धि, भरोसा, सब कुछ था, तो भी वह कोई काम अकेले नहीं कर सकता था। थोड़ा-सा काम तो वह बड़े

उत्साह से कर सकता था लेकिन बाक़ी काम को आलस्य के मारे छोड़ देता और चुपचाप बैठा रहता था। उसी समय एक ऐसे आदमी की ज़रूरत होती थी जो उसे उसका दे, प्रेरणा करे।

सुरेन्द्र के पिता बङ्गाल से बहुत दूर यू० पी० के एक शहर में वकालत करते थे। बङ्गाल के साथ उनका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध न था। उसी शहर में रहकर बीस वर्ष की अवस्था में सुरेन्द्र ने एम० ए० की परीक्षा पास कर ली थी। इसमें कुछ तो उसकी लियाक़त थी, और कुछ था उसकी सौतेली मा का उद्योग। यह विमाता ऐसे अध्यवसाय और तत्परता के साथ पुत्र के पीछे लगी रहती थी कि वह बहुधा यह नहीं समझ पाता था कि उसकी अपनी भी कुछ स्वतन्त्र सत्ता है या नहीं! सुरेन्द्र नाम का कोई स्वतन्त्र जीव इस जगत् में नहीं रहता था; उस विमाता की इच्छा ही एक मनुष्य का रूप रखकर काम-काज करती, सोती-बैठती, पढ़ती-लिखती, परीक्षा देती और पास करती थी—यही कहना ठीक होगा। यह विमाता अपने पेट के लड़के की ओर से कुछ-कुछ उदासीन रहने पर भी सुरेन्द्र की देख-भाल में रत्ती भर ढिलाई न होने देती थी। सुरेन्द्र के रक्षणावेक्षण की कोई सीमा न थी। सुरेन्द्र का थूकना-छींकना तक सौतेली मा की दृष्टि से छिपा न रहता था। इस कर्तव्यपरायण स्त्री के शासन में रहकर सुरेन्द्र ने लिखना-पढ़ना तो सीख लिया,

लेकिन आत्मविश्वास और स्वावलम्ब का पाठ न पढ़ पाया। उसे अपने ऊपर, अपनी शक्ति पर, तनिक भी विश्वास न था। उसके द्वारा कोई काम सर्वाङ्गसुन्दर और सम्पूर्ण सुसम्पन्न हो सकता है, इसकी धारणा ही वह न कर सकता था। किस समय उसे किस चीज़ की ज़रूरत होगी, अथवा किस समय उसे क्या करना होगा, यह ठीक करने का भार वह सम्पूर्ण रूप से किसी दूसरे आदमी पर रख छोड़ता था। नींद लगी है या भूख मालूम होती है, यह भी वह अक्सर ठीक न समझ सकता था। जब से होश सँभाला तभी से विमाता के ऊपर भरोसा करते हुए उसने ये पन्द्रह वर्ष विताये थे। इसी कारण विमाता को उसके लिए अनेक काम करने पड़ते थे। चौबीस घण्टे में बाईस घण्टे विमाता को इसी पुत्र के तिरस्कार, अनुयोग, लाञ्छना, झिड़की और ताड़ना में तथा मुँह बनाने में बिताने पड़ते थे। इसके सिवा, जिस साल सुरेन्द्र को परीक्षा देनी होती थी उस साल पहले ही से उसे रात-रात भर जगाने के लिए बेचारी माता को भी रात की सुख-निद्रा से वञ्चित रहना पड़ता था। अहा! सौत के लड़के के लिए भला कौन स्त्री इतना कर सकती है! पास-परोस के लोग एक स्वर से राय बाबू की घरवाली की बड़ाई करते थे।

सुरेन्द्र के ऊपर विमाता की हार्दिक चेष्टा और यत्न में रत्ती भर कमी न होने पाती थी। राय-गृहिणी जब पुत्र को बकर्ती-

झकती और झिड़कती थीं, तब अगर पुत्र का मुख तमतमा उठता था, और आँखों में आँसू भर आते थे, तो वे फ़ौरन उसे ज्वर आने का पूर्व-लक्षण समझ लेती थीं, इसमें उन्हें तनिक भी सन्देह न रह जाता था। तब वे तुरन्त ही पुत्र को तीन दिन तक केवल सागू-दाना खिलाने की व्यवस्था करने में न चूकती थीं! बेटे की मानसिक उन्नति और शिक्षा के बारे में वे और भी अधिक तीक्ष्ण दृष्टि रखती थीं। अगर कभी सुरेन्द्र के शरीर में सफ़ाई अथवा, आजकल के ज़माने की नई रुचि के अनुसार, नये फ़ैशन और काट-छाँट का कोई कपड़ा वे देख लेतीं तो लड़के की शौक़ीनी की चाट और बाबू बनने की इच्छा को उनकी आँखें चट ताड़ जाती थीं; फिर वे उसी दम दो-तीन सप्ताह के लिए सुरेन्द्र के कपड़ों का धोबी के घर जाना बन्द कर देती थीं।

इसी तरह सुरेन्द्र के दिन गुज़र रहे थे। ऐसी स्नेह-मिश्रित सावधानी के बीच रहते-रहते कभी-कभी सुरेन्द्र को जान पड़ता था, यह उसका जीवन जीवन कहलाने लायक़ नहीं। कभी वह सोचता था, शायद इसी तरह सभी लोगों के जीवन का प्रातःकाल बीतता है। किन्तु किसी-किसी दिन आस-पास के लोग गले पड़कर उसके मस्तिष्क में दूसरी ही तरह की धारणा ठूँस जाया करते थे।

एक दिन ऐसा ही हुआ। एक मित्र ने सुरेन्द्र को सलाह दी कि उसके जैसा बुद्धिमान् लड़का अगर विलायत जा सके,

तो उसके लिए भविष्यत् में उन्नति की बहुत बड़ी आशा है; अपने देश में लौट आकर वह बहुत लोगों का बहुत तरह से उपकार कर सकेगा। यह सलाह सुरेन्द्र को कुछ बुरी न मालूम पड़ी। जङ्गली चिड़िया की बनिस्बत पिंजड़े में क़ैद चिड़िया ही अधिक छटपटाती है। सुरेन्द्र कल्पना की आँखों से जैसे थोड़ी-थोड़ी खुली हवा, थोड़ी-थोड़ी स्वाधीनता की रोशनी देख रहा था। इसी से उसका परवश हृदय उन्मत्त की तरह बाहर निकलने के लिए पिंजड़े के भीतर चारों ओर छटपटाता हुआ चक्कर लगाने लगा।

सुरेन्द्र ने पिता के पास जाकर प्रार्थना की कि मुझे विलायत भेजने का प्रबन्ध कर दीजिए। विलायत-यात्रा करने में जो उन्नति की आशा सुनी थी, वह भी उसने कह सुनाई। पिता ने कहा—'सोच कर देखूँगा।' किन्तु गृहिणी की इच्छा एकदम इसके विरुद्ध पाई गई। उन्होंने पिता और पुत्र के बीच में आँधी की तरह उपस्थित होकर ऐसे ज़ोर से अट्टहास किया कि दोनों आदमी सन्नाटे में आ गये।

मालकिन ने कहा—"तो फिर मुझे भी विलायत भेज दो, नहीं तो वहाँ सुरेन की देख-भाल और सँभाल कौन करेगा? जो यह भी नहीं जानता कि किस वक्त क्या खाना होता है, कब क्या पहनना होता है, उसे अकेले विलायत भेज रहे हो! घर के घोड़े को वहाँ भेजना और इस लड़के को वहाँ भेजना एक-सा ही है। बल्कि घोड़े वग़ैरह जानवर इतना समझ लेते

है कि उन्हें भूख लगी है या नींद मालूम होती है, तुम्हारे लड़के को तो इतना भी ज्ञान नहीं।" इतना कहकर उन्होंने फिर उसी तरह की प्रचण्ड हँसी शुरू कर दी।

हँसी की अधिकता देखकर राय बाबू बहुत लज्जित हुए। सुरेन्द्र ने भी समझा कि इस तरह की अखण्डनीय सुदृढ़ युक्ति के विरुद्ध और किसी प्रकार का प्रतिवाद किया ही नहीं जा सकता। उसने विलायत जाने की आशा छोड़ दी। उसके 'उसी' मित्र ने यह हाल सुनकर बड़ा दुःख प्रकट किया। किन्तु वह भी यह न बतला सका कि विलायत जाने के लिए और कोई उपाय हो सकता है कि नहीं। बातचीत खतम होते समय उसने इतना अवश्य कहा कि इस तरह पराधीन रहने की अपेक्षा भीख माँगना भी बेहतर है, और यह तो निश्चित है कि जो तुम्हारी तरह सम्मान के साथ एम० ए० की परीक्षा पास कर सकता है उसे कहीं भी पेट भर आहार की कमी नहीं हो सकती।

सुरेन्द्र घर पहुँचकर इसी बारे में सोचने लगा। जितना ही उसने सोचकर देखा, उतना ही उसे मित्र का यह कहना कि 'ईससे तो भीख माँगकर खाना अच्छा', ठीक जान पड़ने लगा। यह ठीक है कि सभी आदमी विलायत नहीं जा पाते; लेकिन उन्हें इस तरह न-ज़िन्दा न-मुर्दा बनकर दिन नहीं बिताने पड़ते।

एक दिन अधिक रात बीते सन्नाटे में सुरेन्द्र घर से चल दिया। स्टेशन पहुँचकर उसने कलकत्ते का टिकट ख़रीदा। अब वह

गाड़ी में सवार हो गया। पिता के नाम एक पत्र लिखकर उसने डाक में छोड़ दिया। उसमें यही लिखा—कुछ दिनों के लिए मैं घर छोड़ता हूँ। व्यर्थ खोजने से कुछ लाभ न होगा। और, अगर पता भी लग जायगा, तो मेरे घर लौटने की कोई सम्भावना नहीं।

राय बाबू ने पुत्र का यह पत्र गृहिणी को दिखाया। उन्होंने कहा—सुरेन अब सयाना हुआ है, पढ़-लिख चुका है, पर निकल आये हैं, अब न उड़कर भाग खड़ा होगा तो और कब होगा!

तथापि पिता ने पता लगाने में कमी नहीं की। कलकत्ते में जान-पहचान के जितने लोग रहते थे उन सबको पत्र लिख भेजे। लेकिन कोई फल न हुआ। सुरेन्द्र का कुछ पता नहीं लगा।

२

कलकत्ते की सड़कें भीड़भाड़ और शोर-गुल से गुलज़ार रहती हैं। उन सड़कों पर पहुँचते ही सुरेन्द्र हक्का-बक्का हो गया। इस मुशकिल में सुरेन्द्र को कोई सहायक न सूझ पड़ा। यहाँ झिड़कने और तिरस्कार करनेवाला भी कोई न था, और दिन-रात अपने कड़े शासन में रखनेवाला भी कोई न देख पड़ता था। भूख-प्यास से मुँह सूख जाने पर कोई उसकी ओर घूमकर नहीं देखता; मुँह उदास होने पर भी उस ओर कोई ध्यान नहीं देता। यहाँ आप ही अपनी ख़बर

लेनी होती है, आप ही अपना ताक रखना पड़ता है। यहाँ भीख भी मिलती है, करुणा मिलने की जगह भी है, आश्रय भी प्राप्त हो जाता है, लेकिन उसके लिए स्वयं चेष्टा करनी पड़ती है। अपनी इच्छा से ख़ुद कोई तुम्हारे दुख-सङ्कट में शरीक न होगा।

यहाँ आकर पहले-पहल सुरेन्द्र ने यह सीखा कि खाने की कोशिश ख़ुद करनी होती है, आश्रय के लिए स्थान ख़ुद ही खोज लेने की ज़रूरत होती है, और सो जाने से क्षुधा नहीं शान्त होती; भोजन कर लेने से नींद की हाजत नहीं हटती।

सुरेन्द्र को घर छोड़े कितने ही दिन हो गये। कितनी ही राहों घूमने-फिरने से उसका शरीर भी बहुत थक गया था, और पास का धन भी ख़तम हो आया था। कपड़े मैले हो चले थे, फटने भी लगे थे। रात को पड़कर सो रहने भर को भी कोई ठिकाना नहीं था। इससे सुरेन्द्र की आँखों में आँसू भर आये। घर को पत्र लिखने की इच्छा नहीं होती। बड़ी शरम लगती है। और, सबसे बढ़कर यह रुकावट है कि जब उसको सौतेली माँ के स्नेह-कठिन चेहरे की याद हो आती है, तब घर जाने की इच्छा आकाश-कुसुम की तरह ग़ायब हो जाती है। वहाँ किसी समय अपने रहने की बात सोचते भी उसे डर लगता है।

एक दिन एक अपने ही समान ग़रीब आदमी को देखकर सुरेन्द्र ने कहा—भैया, तुम लोग यहाँ क्या करके खाते-पीते हो?

वह आदमी कुछ सीधा-सादा था, नहीं तो प्रश्नकर्ता की हँसी उड़ाने लगता। उसने उत्तर दिया—नौकरी और मेहनत-मजूरी करके पैसे कमाते और उसी से खाते-पीते हैं। कलकत्ते में रोज़गार की क्या कमी है?

सुरेन्द्र ने पूछा—भला मुझे कहीं कोई नौकरी दिला सकते हो?

वह—तुम कौन-सा काम जानते हो?

सुरेन्द्र कोई काम करना न जानता था। इसी से चुप होकर सोचने लगा।

वह—तुम क्या भले घर के लड़के हो?

सुरेन्द्र ने सिर हिलाकर हामी भरी।

वह—तो फिर लिखना-पढ़ना क्यों नहीं सीखा?

सुरेन्द्र—लिखा-पढ़ा हूँ।

उस आदमी ने दम भर सोचकर कहा—"तो तुम इस बड़े मकान में जाओ। उसमें एक बड़े आदमी, कोई ज़मींदार रहते हैं। वे कुछ इन्तज़ाम कर देंगे।" यह कहकर वह चल दिया।

सुरेन्द्र फाटक के पास आया। ज़रा ठिठककर खड़ा हो गया। फिर पीछे हट गया। फिर वहीं आकर खड़ा हुआ। फिर पीछे लौट गया। उस दिन और कुछ नहीं हो सका। दूसरा दिन भी इसी तरह दुविधा में बीत गया। दो दिन इसी तरह फाटक के पास उम्मेदवारी करके

तीसरे दिन हिम्मत बाँधकर सुरेन्द्र भीतर दाखिल हुआ। सामने एक नौकर खड़ा था। उसने पूछा—क्या चाहते हो?

"बाबू साहब से मुलाक़ात करना चाहता हूँ।"

"बाबू साहब घर में नहीं हैं।"

सुरेन्द्र का हृदय आनन्द से भर गया—एक बहुत ही कठिन काम से उसे छुटकारा मिल गया। बाबू घर में नहीं हैं! नौकरी की बात, अपने दुःख-कष्ट की रामकहानी नहीं कहनी पड़ी—यही उसके इस आनन्द का कारण था। तब वह दूने उत्साह से लौट पड़ा और हलवाई की दूकान में बैठकर पेट भर खाने के बाद आनन्दपूर्वक कुछ देर घूमता-फिरता रहा। वह मन में सिलसिलेवार सोचने लगा कि अगले दिन किस ढङ्ग से बातचीत की जाय, जिसमें अवश्य ही उसका कुछ ठिकाना हो जाय।

मगर दूसरे दिन वैसा उत्साह नहीं रहा। सुरेन्द्र जितना ही उस घर के निकट पहुँचने लगा उतना ही वहाँ से लौट चलने की इच्छा ज़ोर पकड़ने लगी। क्रमशः फाटक के पास पहुँचने पर बिलकुल ही उसका जी बुझ गया। पैर किसी तरह भीतर घुसने को तैयार न हुए। आज उसको किसी तरह यह नहीं जान पड़ता था कि वह अपने ही काम के लिए यहाँ आया है। ठीक यही ख़याल मन में आता था कि जैसे और किसी ने ज़ोर करके उसे इधर ठेलकर भेज दिया है। किन्तु फाटक पर खड़े होकर उम्मेदवारी न करने

का वह प्रश्न कर चुका था, इसलिए भीतर जाना ही पड़ा। उसी नौकर से फिर भेंट हुई। उसने कहा—बाबू साहब इस वक्त घर में मौजूद हैं। क्या भेंट कीजिएगा ?

"हाँ।"

"तो फिर आइए।"

यह और भी कठिन था। ज़मींदार बाबू का मकान बहुत बड़ा था। सर्वत्र पूरा साहबी ढङ्ग, अँगरेज़ी सामान और विलायती क़ायदे की सजावट नज़र आती थी। कमरे के बाद कमरा था; सङ्गमरमर की सीढ़ियाँ थीं; झाड़-कँवल-लैम्प लाल कपड़े के गिलाफ़ से ढके हुए हर एक कमरे में शोभा पा रहे थे। दीवारों से सटे हुए आदमक़द क़ीमती आईने रक्खे थे। कितने ही क़लमी चित्र और फ़ोटो लगे हुए थे। किन्तु यह सब सजावट किसी और के लिए भले ही आश्चर्य की सामग्री हो, सुरेन्द्र के लिए नहीं थी। क्योंकि उसके बाप का घर भी किसी ग़रीब की झोपड़ी न था। और चाहे जो हो, वह दरिद्र पिता के आश्रय में नहीं पला था। सुरेन्द्र तो केवल उसी आदमी के बारे में सोच रहा था जिससे मुलाक़ात करने, जिसकी ख़ुशामद करने वह जा रहा है। वे क्या सवाल करेंगे, और यह उनका क्या उत्तर देगा ?

किन्तु अब तो यह कुछ सोचने का समय नहीं है। घर के मालिक सामने ही बैठे हैं। सुरेन्द्र से प्रश्न हुआ—क्या काम है ?

आज तीन दिन से सुरेन्द्र यही सोच रहा था, किन्तु यहाँ पहुँचकर सब भूल गया। बोला—मैं—मैं—

ज़मींदार बाबू का नाम था ब्रजनाथ लाहिड़ी। ये पूर्व-बङ्गाल के एक ज़मींदार हैं। सिर के बाल दो-चार पकने लगे हैं—नज़ले का उपद्रव न था, अवस्था के अनुसार बालों का पकना मुनासिब ही था। बड़े आदमी ठहरे, दुनिया देख चुके थे, इसी से सुरेन्द्र को देखते ही उसके बारे में बहुत कुछ ताड़ गये। कहने लगे—हाँ जी, कहो, क्या चाहते हो तुम ?

"कोई एक—"

"कोई एक क्या ?"

"नौकरी।"

ब्रजबाबू ने मुसकुराते हुए कहा—यह तुमसे किसने कहा कि मैं तुमको नौकरी दे सकता हूँ ?

"रास्ते में एक आदमी से भेंट हुई थी। मैंने उससे इस बारे में पूछा तो उसी ने आपका नाम बताया—"

"अच्छा। तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"पछाँह में।"

"वहाँ तुम्हारे कौन-कौन हैं ?"

सुरेन्द्र ने सब हाल बता दिया।

"तुम्हारे पिता क्या करते हैं ?"

अवस्था के फेर में पड़कर सुरेन्द्र ने नया ढङ्ग सीख लिया था। कुछ रुक-रुककर उत्तर दिया—एक साधारण नौकरी करते हैं।

"उससे गुज़र नहीं होता, इसी से तुम नौकरी करना चाहते हो—क्यों ?"

"जी हाँ।"

"यहाँ किस जगह रहते हो ?"

"कोई निश्चित स्थान नहीं है—किसी-न-किसी जगह पड़ रहता हूँ।"

व्रजबाबू के मन में दया हो आई। सुरेन्द्र को पास बिठलाकर कहने लगे—तुम अभी तक कच्चे ही हो। इस कच्ची उमर में घर छोड़कर परदेश आने के लिए तुम विवश हुए हो, यह सुनकर मुझे खेद हुआ। मैं खुद तो कोई नौकरी तुमको दे नहीं सकता, लेकिन इतना कर दे सकता हूँ कि तुम्हारी नौकरी का कोई उपाय हो जायगा।

"अच्छी बात है" कहकर सुरेन्द्रनाथ जाने लगा। यह देखकर व्रजबाबू ने उसे लौटाकर कहा—तुम्हें इस बारे में अब क्या कुछ और पूछने की ज़रूरत नहीं है ?

"जा नहीं।"

"तो इतने ही से तुम्हारा काम हो जायगा? तुमने यह तो कुछ जानने की कोशिश ही नहीं की कि मैं क्या उपाय कर सकता हूँ, कब कर सकता हूँ।"

सुरेन्द्र लज्जित होकर घूमकर खड़ा हो गया। व्रजबाबू ने हँसकर कहा—अब यहाँ से कहाँ जाओगे ?

"किसी हलवाई की दूकान में।"

"वहीं भोजन करोगे ?"

"रोज़ वहीं करता हूँ।"

"तुमने पढ़ा-लिखा क्या और कहाँ तक है ?"

"योंही थोड़ा-बहुत।"

"मेरे लड़के को पढ़ा सकते हो ?"

सुरेन्द्र ने ख़ुश होकर कहा—जी हाँ, पढ़ा सकूँगा।

ब्रजबाबू फिर हँसे। उन्हें समझ पड़ा कि दुःख और ग़रीबी के मारे इस लड़के के हवास ठीक नहीं हैं। क्योंकि कितनी आयु के बालक को पढ़ाना होगा, क्या पढ़ाना होगा, यह कुछ पूछे बिना ही इतना प्रसन्न हो उठना उनको पागल-पन का ही चिह्न जान पड़ा उन्होंने कहा—अगर वह लड़का कहे कि मैं बी० ए० क्लास में पढ़ता हूँ, तो तुम उसे कैसे पढ़ाओगे ?

सुरेन्द्र ने कुछ गम्भीर भाव से सोचकर कहा—तो भी एक तरह से काम चला लूँगा।

ब्रजबाबू ने फिर और कुछ नहीं कहा। नौकर को बुलाकर कहा—बाँके, इन बाबू के रहने के लिए एक कमरा ख़ाली कर दो, और इनके नहाने-खाने का इन्तज़ाम करो।

इसके बाद सुरेन्द्र की ओर देखकर ब्रजबाबू ने कहा—शाम के बाद मैं फिर तुमको बुलाऊँगा। जब तक कहीं कोई नौकरी की सूरत नहीं होती तब तक आराम से यहीं, मेरे घर में रहो।

दोपहर को भोजन करने के लिए भीतर जाकर ब्रजबाबू ने अपनी लड़की माधवी को पास बुलाकर कहा—बेटी, एक दुखी गरीब आदमी को मैंने आज अपने घर में आश्रय दिया है।

माधवी—कौन है बाबूजी ?

ब्रज०—कहा तो, एक दुखिया है। इससे अधिक मुझे मालूम नहीं। कुछ लिखा-पढ़ा भी है, क्योंकि तुम्हारे दादा (बड़े भाई) को पढ़ाने की बात कहते ही उसने उसे मंजूर कर लिया। जो आदमी बी० ए० के विद्यार्थी को पढ़ाने की हिम्मत कर सकता है वह कम-से-कम तुम्हारी छोटी बहन को तो अवश्य पढ़ा सकेगा। मैं सोचता हूँ, उसे प्रमीला का मास्टर कर दिया जाय।

माधवी ने इसमें कुछ आपत्ति नहीं की।

शाम के बाद सुरेन्द्र को बुलवाकर ब्रजबाबू ने यही बात कह दी। दूसरे दिन से सुरेन्द्र प्रमीला को पढ़ाने लगा।

प्रमीला सात बरस की लड़की थी। वह "बोधोदय" पढ़ती थी। उसने बड़ी बहन माधवी से अँगरेज़ी की पहली किताब मेंढक की कहानी तक पढ़ी थी। लजेन्जेस, अपनी कापी, किताब, स्लेट, पेंसिल, क़लम वग़ैरह सामान लाकर प्रमीला नये मास्टर के पास पढ़ने बैठी।

"Do not move," सुरेन्द्र ने बताया—"Do not move" इसके माने हुए—हिलो मत।

प्रमीला यही बार-बार रटकर याद करने लगी।

कुछ देर बाद सुरेन्द्र ने अनमने भाव से अपने पास स्लेट खींच ली। वह पेंसिल लेकर उस पर कठिन-कठिन हिसाब लगाने लगा। इसी तरह सात, फिर आठ, फिर नव बजते गये। प्रमीला कभी इधर और कभी उधर फिरकर तसवीर वाले सफ़े उलटाकर, लेटकर, बैठकर, मुँह में लज़ेञ्जेस की टिकिया रखकर, बेचारे चित्रलिखित मेंढक के सारे बदन में स्याही पोतती हुई रटती जाती थी—'Do not move' माने हिलो मत।

प्रमीला ने एकाएक ऊबकर कहा—मास्टर साहब, अब भीतर जाऊँ?

"जाओ।"

सुरेन्द्र का सबेरे का समय इसी तरह बीतता है। लेकिन दोपहर के वक्त का काम ज़रा और ढँग का है। नौकरी लगा देने के लिए ब्रजबाबू ने अनुग्रह-पूर्वक कई भले आदमियों के नाम चिट्ठियाँ लिख दी थीं। वे चिट्ठियाँ जेब में रखकर सुरेन्द्र दोपहर को निकल जाता है। पता लगाते-लगाते लोगों के घरों के सामने जाकर खड़ा होता है। देखता है—कितना बड़ा मकान है, कितनी खिड़कियाँ अथवा दरवाज़े हैं, कितने कमरे हैं, दुमंज़िला है या तिमंज़िला, दरवाज़े के आगे कोई लाल्टेन का खम्भा है या नहीं। यों घूम-फिरकर वह शाम के पहले ही डेरे पर लौट आता है।

कलकत्ते में आते ही सुरेन्द्र ने कुछ किताबें ख़रीद ली थीं। कुछ घर से भी साथ ले आया था। आजकल गैस की रोशनी में उन्हीं को पढ़ा करता है। ब्रज बाबू नौकरी के बारे में पूछताछ करते हैं, तो या तो चुप रहता है, या कह देता है—बड़े आदमियों से मुलाक़ात ही नहीं होती।

३

ब्रजबाबू की स्त्री को मरे चार साल हो गये। बुढ़ापे के इस दुःख की भीषणता को बूढ़े भुक्तभोगी ही भली भाँति समझ सकते हैं। ख़ैर, वह बात जाने दो। ब्रजबाबू की दुलारी लड़की माधवी देवी इसी सोलह साल की उमर में पति को गँवा चुकी है। इसी शोक ने ब्रजबाबू के शरीर का आधे से अधिक ख़ून चूस डाला है। उन्होंने बड़ी साध से, बड़ी धूम-धाम के साथ लड़की का ब्याह किया था। अपने यहाँ बहुत द्रव्य होने के कारण उन्होंने यह नहीं देखा-भाला कि वरपक्ष धनी है या नहीं। उन्होंने लड़के की ज़र-ज़मीन-जायदाद न देखकर उसकी विद्या, रूप, स्वास्थ्य, शील, सच्चरित्रता आदि सद्गुणों की सत्ता को ही महत्त्व दिया था। ये सब बातें अच्छी तरह देख-भालकर उन्होंने माधवी का विवाह किया था।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में माधवी का ब्याह हुआ था। तीन साल तक वह सुसराल में रही। वहाँ आदर, प्यार, स्नेह, सभी कुछ उसे मिला था। किन्तु उसका पति योगेन्द्र-

नाथ अकाल-मृत्यु के आक्रमण से न बच सका। माधवी के इस जन्म की सभी आशा-अभिलाषाओं को निर्मूल करके, ब्रजराज की छाती में वज्र-प्रहार करके, वह होनहार लड़का स्वर्ग सिधार गया। मरते समय जब माधवी बिलख-बिलख कर विलाप करने लगी, तब स्वामी ने धीमे और कोमल स्वर से कहा था—माधवी, तुम्हें छोड़कर जो जा रहा हूँ, यही मुझको सबसे बढ़कर दुःख है। मरने से मेरी कुछ हानि नहीं हो सकती; मगर तुम जो जीवन भर दुःख-शोक-कष्ट भोगती रहोगी, यही सोचकर मेरा चित्त बहुत विचलित और व्याकुल हो रहा है। जी भरके तुम्हें आदर, प्यार न कर पाया—

योगेन्द्र के नेत्रों से बह रहे आँसुओं की झड़ी उसके शीर्ण वक्षःस्थल पर गिर रही थी। पति के आँसू पोंछते हुए माधवी ने कहा था—दूसरे जन्म में जब तुम्हारे पैरों में मुझे स्थान मिलेगा तब आदर-प्यार करलेना—

इस पर योगेन्द्र ने कहा था—माधवी, देखो, मेरे जीवित रहते तुम्हारे जीवन का लक्ष्य मुझे सुख पहुँचाना होता, अब उस जीवन का लक्ष्य तुम सभी दीन-दुखी जीवों को सुख पहुँचाना, उनकी सेवा करना, बनाना। जिसके मुख पर क्लेश के चिह्न देखना, जिसे मलिन-मुख देखना, उसी को प्रसन्न-प्रफुल्ल बनाने की कोशिश करना। और क्या कहूँ माधवी,—

फिर उमड़े हुए आँसू बह चले, और माधवी उन्हें पोंछने लगी।

योगेन्द्र ने फिर कहा—सुमार्ग में रहना—तुम्हारे ही पुण्य से मैं फिर तुम को पाऊँगा।

उसी दिन से माधवी बिलकुल बदल गई है। क्रोध, डाह, द्वेष आदि की जो कुछ मात्रा उसमें थी वह सब स्वामी की चिता-भस्म के साथ ही गङ्गाजल में उसने ज़िन्दगी भर के लिए बहा दी। इस जीवन की कितनी साध, कितनी आकाङ्क्षा होती है! विधवा हो जाने से वह साध और आकाङ्क्षा कहीं चली नहीं जाती। माधवी के हृदय में जब कोई साध या आकाङ्क्षा होती है तब वह स्वामी की उन्हीं, अन्त समय की, बातों को सोचती है। 'वही जब नहीं रहे तब फिर किसलिए किसी से डाह या द्वेष करूँ? किस के लिए दूसरे को रुलाऊँ!' और सच तो यह है कि ये सब हीन प्रवृत्तियाँ उसके हृदय में किसी समय थीं ही नहीं। वह अमीर की लड़की है—उसकी कोई साध, कोई आकाङ्क्षा अपूर्ण नहीं रही—डाह और द्वेष करना तो कभी उसने सीखा ही न था।

माधवी के हृदय में अनेक भावमय प्रेम-प्रसून विकसित होते हैं। पहले जब सधवा थी, तब वह उन फूलों की माला गूँथ-गूँथकर अपने स्वामी को पहना दिया करती थी। किन्तु अब स्वामी के न रहने पर भी उसने उन फूलों के पेड़ को काट नहीं डाला। इस समय भी उसमें वैसे ही फूल खिलते हैं, मगर अब वे भूमि पर झड़ पड़ते हैं। अब वह माला अवश्य नहीं गूँथती, किन्तु गुच्छे के गुच्छे फूलों से अञ्जलि भरकर

वह पुष्पाञ्जलि दीन-दुखियों को बाँट देती है। जिसके नहीं है, उसी को देती है; रत्ती भर भी कञ्जूसी उसमें नहीं नज़र आती, चेहरे पर उदासी की छाया नहीं पड़ने पाती।

ब्रजबाबू की घरवाली का जिस दिन स्वर्गवास हुआ उसी दिन से इस घर में विशृङ्खला बस गई थी। सभी अपनी-अपनी चिन्ता में चूर रहते थे, कोई किसी की देख-भाल न करता था, कोई किसी की ओर ध्यान न देता था। सभी के लिए एक-एक ख़िदमतगार मुक़र्रर था। वे लोग अपने-अपने मालिक का काम कर देते थे। रसोई में रसोइँए महराज भोजन तैयार कर देते थे, और मानों 'अन्नसत्र' की तरह सब लोग आ-आकर अपनी-अपनी जगह पर बैठ जाते थे। किसी को खाने को मिलता था, किसी को नहीं भी। उस भूख के-मारे दुखिया की ख़बर लेना कैसा, उसकी ओर कोई आँख उठाकर देखता तक न था।

किन्तु जिस दिन से माधवी भादों की भरी गङ्गा के प्रवाह जैसा रूप, स्नेह और ममता लेकर सुसराल से बाप के घर लौट आई उसी दिन से जान पड़ा, जैसे उस उजड़े हुए घर में नवीन वसन्त फिर से लौट आया। अब तो सभी उसको बड़ी दीदी कहते हैं, सभी माधवी के भक्त हो गये हैं। घर का पालतू कुत्ता तक दिन भर के बाद एक बार बड़ी दीदी को देखने के लिए उत्सुक देख पड़ता है—क्षुद्र जीव को भी जैसे बड़ी दीदी के दर्शन किये बिना कल नहीं पड़ती। घर के इतने आदमियों में

से एक आदमी को उसने भी जैसे स्नेहमयी, सर्वमयी पहचान कर अपना हितू चुन लिया है। घर के मालिक ब्रजबाबू से लेकर जमादार, गुमाश्ता, मुनीब और अदना नौकर-चाकर तक, सभी बड़ी दीदी के भक्त हैं, सबके मन में उसकी मूर्ति, उसका ख़याल बना रहता है; सभी उसके आसरे रहते हैं। हर एक आदमी को पक्का विश्वास है कि चाहे जिस कारण से हो, बड़ी दीदी के ऊपर मेरा कुछ विशेष—औरों से अधिक—अधिकार है।

स्वर्ग में जिस कल्पवृक्ष का अस्तित्व सुन पड़ता है उसे हमने आँखों से नहीं देखा; यह भी नहीं जानते कि उसे कभी देख पावेंगे या नहीं; अतएव नहीं कह सकते कि वह कैसा है, उसमें क्या-क्या विशेषताएँ हैं। लेकिन यह अवश्य निःसंदेह होकर, बिना किसी सङ्कोच के कह सकते हैं कि ब्रजबाबू के यहाँ रहनेवाले लोग एक सजीव कल्पवृक्ष पा गये थे। वह कल्पवृक्ष माधवी थी। उसके निकट जाकर हाथ फैलानेवाला कभी निराश नहीं होता था—हँसता हुआ ही लौटता था।

ऐसे प्रशंसनीय परिवार में पहुँचकर सुरेन्द्र को एक नये ढङ्ग का जीवन बिताने का उपाय सूझ पड़ा। उसने जब देखा कि सभी ने एक ही आदमी के ऊपर अपना-अपना बोझ लाद रक्खा है तब उसने भी वही किया। तथापि औरों की अपेक्षा उसकी धारणा माधवी के सम्बन्ध में ज़रा दूसरी तरह की थी। वह सोचता था, इस घर के भीतर बड़ी दीदी नाम की एक सजीव वस्तु रहती है; वह सभी की देख-रेख रखती है, ख़बर

लेती है, सबका हठ रखती है, फ़रमाइश पूरी करती है, उत्पात सहती है। जिसे जिस चीज़ की ज़रूरत होती है, वह उनसे मिल जाया करती है। पहले कलकत्ते की सड़कों पर मारे-मारे फिरते समय सुरेन्द्र को अपने लिए आप ही फ़िक्र करने की ज़रूरत कुछ-कुछ जान पड़ने लगी थी; किन्तु जब से वह इस घर में आया तब से तो यह बिलकुल ही भूल गया कि उसे एक दिन भी अपने लिए कुछ फ़िक्र करनी पड़ी थी, या आइन्दा करनी पड़ेगी।

कोट, कुर्ता, धोती, जूता, छाता, छड़ी वगैरह जिन चीज़ों की ज़रूरत आदमी को हुआ करती है वे सब काफ़ी तादाद में सुरेन्द्र के पास थीं। दस्ती रूमाल तक न जाने कौन उसके लिए कपड़ों के बीच में ख़याल करके क़ायदे के साथ रख जाता था। पहले-पहल उसे यह जानने के लिए कौतूहल होता था कि-कौन लाकर रख गया है। वह जब पूछता कि ये सब चीज़ें कहाँ से आई हैं तब उत्तर मिलता—बड़ी दीदी ने भेजी हैं। आजकल तो जलपान का सामान रखकर जो रकाबी भीतर से आती है उसे देखकर ही वह समझ जाता है कि स्नेहमयी बड़ी दीदी ही अपने हाथ से यह सब सामग्री सजा कर भेजती हैं।

एक दिन सुरेन्द्र हिसाब करने बैठा तो उसे कम्पास की याद आई। उसने प्रमीला से कहा—प्रमीला, जाओ, बड़ी दीदी से कम्पास तो माँग लाओ।

बड़ी दीदी को भला कम्पास से क्या काम! मगर माधवी ने फ़ौरन् बाज़ार से आदमी के हाथ ख़रीद मँगाया, और भेज दिया। शाम को हवा खाकर लौटने पर सुरेन्द्र को अपनी टेबिल पर कम्पास रक्खा देख पड़ा। दूसरे दिन सबेरे प्रमीला ने कहा—मास्टर साहब, दिदिया ने कल यह भेज दिया था।

इसके बाद बीच-बीच में सुरेन्द्र ऐसी चीज़ें मँगा भेजने लगा जिनके लिए माधवी बड़े असमञ्जस में पड़ जाती थी। बहुत तलाश करने पर कहीं वह चीज़ मिलती थी, और तब वह सुरेन्द्र की माँग पूरी कर पाती थी। किन्तु माधवी ने यह कभी नहीं कहला भेजा कि फ़लाँ चीज़ नहीं है।

मान लो, कभी सुरेन्द्र ने अचानक कहा—"प्रमीला, जाकर बड़ी दीदी से पाँच पुरानी धोतियाँ तो माँग लाओ। इन मँगतों को देनी है।" अकसर माधवी को इतनी फुरसत न रहती थी कि वह नया-पुराना देखकर छाँटकर निकाले और दे। तब वह अपनी ही पाँच धोतियाँ उठाकर भेज देती थी। ऊपर खिड़की से उसे देख पड़ता था कि चार-पाँच ग़रीब-दुखी आदमी आनन्द-कोलाहल करते हुए धोतियाँ लिये चले जा रहे हैं।

सुरेन्द्रनाथ के छोटे-मोटे ये आवेदन-अत्याचार नित्यप्रति माधवी को सहन करने पड़ते थे। क्रमशः इन उपद्रवों के सहने का माधवी को ऐसा अभ्यास हो गया कि अब उसे यह न जँचता था कि एक नये जीव ने उसकी गिरिस्ती में आकर

प्रतिदिन के काम-काज के बीच नये ढङ्ग के उपद्रव खड़े कर दिये हैं।

इतना ही नहीं, माधवी को आजकल इस नये जीव के बारे में बहुत सावधान रहना पड़ता है, बहुत अधिक नज़र रखनी पड़ती है—मुस्तैदी के साथ खोज-ख़बर लेनी पड़ती है। बात यह है कि अगर सुरेन्द्र अपनी ज़रूरत के माफ़िक सब चीज़ माँग लिया करता तब तो कुछ फ़िक्र न होती; माधवी को जितनी मेहनत करनी पड़ती है वह आधी ही रह जाती! लेकिन बड़ी भारी चिन्ता और कठिनाई तो यही है कि वह भोंदू अपने लिए कुछ भी नहीं माँगता—अपने लिए किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं बताता। पहले-पहल माधवी ने यह नहीं जान पाया था कि सुरेन्द्र बिलकुल ही अपनी ओर से बेख़बर रहता है। कभी-कभी सबेरे चाय रक्खी-रक्खी ठण्डी हो जाती है, वह पीता ही नहीं! जलपान के लिए भेजी गई मिठाई कभी-कभी रक्खी ही रह जाती है—शायद हाथ लगाना ही वह भूल जाता है—मुमकिन है, कुत्ते ही को सब खिलाकर घूमने चल देता हो। चौके पर भोजन करने बैठता है, तो भोजन-सामग्री की क़दर ही नहीं करना जानता—कुछ थाली के नीचे गिराता है, कुछ अगल-बगल हटा दिया करता है—जैसे कोई चीज़ ही उसको नहीं रुचती! नौकर लोग आकर माधवी से कहते हैं—मास्टर साहब तो पागल हैं; न कुछ देखते हैं न कुछ जानते हैं, न किसी बात की ख़बर रखते हैं; सिर्फ़ किताबें लिये बैठे रहते हैं।

कभी-कभी ब्रजबाबू पूछ बैठते हैं—"कहो जी, नौकरी-चाकरी का कहीं कुछ सिलसिला लगा?" सुरेन्द्र इसका गोल-माल उत्तर देकर टाल दिया करता है। माधवी अपने पिता के मुँह से सब कुछ सुन लेती है। किन्तु यह बात केवल वही ख़ूब समझती है कि मास्टर साहब नौकरी के लिए तिल भर भी उद्योग नहीं करते, और उनकी नौकरी करने की इच्छा भी नहीं है। फ़िलहाल जो कुछ उन्हें प्राप्त है उसी में उनको पूरा सन्तोष है।

दस बजते ही सुरेन्द्र को नहाने और खाने के लिए बड़ी दीदी की कड़ी ताकीद होने लगती है। अच्छी तरह भोजन न करने पर बड़ी दीदी की ओर से प्रमीला आकर मीठी झिड़की देती है। अधिक रात बीते तक किताब लिये बैठे रहने से नौकर आकर ज़बरन् गैस की बत्ती बुझा देते हैं। मना करने से नहीं मानते। कहते हैं—हम क्या करें बाबूजी, बड़ी दीदी का यही हुकुम है।

एक दिन माधवी ने पिता से हँसकर कहा—बाबूजी, जैसी प्रमीला है वैसा ही मास्टर भी उसे मिल गया है।

ब्रज०—क्यों बिटिया ?

माधवी—दोनों ही बच्चे हैं। जैसे प्रमीला को अभी इसका ज्ञान नहीं कि उसे कब किस चीज़ की ज़रूरत है, कब क्या खाना चाहिए, किस समय सोना उचित है, कौन समय किस काम के लिए ठीक है—अपने बारे में कुछ भी नहीं सोच-

समझ सकती, वही हाल उसके मास्टर का भी है। वे भी अपनी फ़िक्र नहीं रखते; अपने बारे में, अपनी ज़रूरतों के बारे में कुछ भी नहीं समझते-बूझते। उस पर मज़ा यह कि वक्त-बेवक्त ऐसी चीज़ माँग बैठते हैं कि होश-हवास जिसके सही होंगे वह आदमी कभी न माँगेगा।

ब्रजबाबू की समझ में बात नहीं आई। वे माधवी का मुँह ताकने लगे।

माधवी ने हँसकर कहा—आपकी लड़की (प्रमीला) कहीं समझ पाती है कि उसे किस समय क्या दरकार होगा?

"तो वह नहीं समझ पाती?"

"और कभी-कभी किसी चीज़ के लिए बेवक्त ज़िद करती, मचलती और ऊधम मचा देती है न?"

"हाँ, ऐसा तो करती है।"

"मास्टर भी यही करते हैं—"

ब्रजबाबू ने हँसकर कहा—यह लड़का कुछ पागल सा जान पड़ता है।

माधवी—पागल नहीं बाबूजी, वे किसी बड़े आदमी के लड़के हैं।

ब्रजबाबू ने विस्मित होकर पूछा—यह तुमने कैसे जाना?

माधवी का इस बारे में कुछ भी जाना न था; यह केवल उसका अनुमान था। माधवी बुद्धिमती थी। उसने देखा

कि सुरेन्द्र अपना कोई काम अपने हाथ से नहीं कर पाता, पराया मुँह ताका करता है। दूसरा कोई कर दे तो काम हो, नहीं पड़ा रहे। उसकी यह असमर्थता लखकर ही माधवी ताड़ गई कि यह ज़रूर किसी रईस का दुलारा लड़का है। उसे जान पड़ता था, यह उसका पहले का अभ्यास है। खास-कर इस नये ढंग की भोजन की प्रणाली ने माधवी को और भी चौंका दिया है। कोई भी खाने-पीने की सामग्री ऐसी नहीं होती जिसकी ओर सुरेन्द्र की विशेष रुचि दिखाई दे; वह किसी चीज़ को तृप्ति-पूर्वक नहीं खाता—उसे किसी की चाह नहीं है। यह वृद्ध का जैसा वैराग्य, पर उसके साथ ही बालक की सी सरलता, पागल का-सा उपेक्षा का भाव—खाने को दो तो खा लेता है, और न दो तो नहीं भी खाता—ये सब बातें, यह प्रकृति और प्रवृत्ति, माधवी को बहुत ही रहस्यपूर्ण प्रतीत होती थी। इसी कारण इस अपरिचित अजनबी मास्टर की ओर अज्ञात रूप से एक करुणा की आँख लगी रहती थी। सुरेन्द्र अक्सर कुछ माँगा-जाँचा न करता था; लज्जा के कारण नहीं, उसे ज़रूरत ही नहीं होती, इससे नहीं माँगता। जब जिस किसी चीज़ की ज़रूरत होती है तब वक्त-बेवक्त कुछ नहीं देखता—एकदम बड़ी दीदी के पास माँग पहुँच जाती है। माधवी हँसती है, अपने मन में कहती है—यह आदमी बिलकुल बच्चों की तरह सीधा और भोला है।

४

मनोरमा माधवी की हमजोली और बचपन की सखी है। बहुत दिनों से माधवी ने उसे चिट्ठी नहीं लिखी। अपनी चिट्ठियों का जवाब न पाकर मनोरमा रूठ गई थी। आज दोपहर के बाद थोड़ा-सा समय निकालकर माधवी अपनी सखी को चिट्ठी लिखने बैठी। इसी समय छोटी बहन प्रमीला ने आकर पुकारा—"बड़ी दीदी!" माधवी ने सिर उठाकर कहा—क्या है?

प्रमीला ने कहा—मास्टर साहब की ऐनक कहीं खो गई। लाओ, एक ऐनक दो।

माधवी हँस पड़ी। बोली—जाकर अपने मास्टर साहब से कहो, मैं क्या ऐनक की दूकान रक्खे बैठी हूँ?

प्रमीला दौड़ती हुई मास्टर के पास चली। माधवी ने उसे पुकारकर लौटाया। कहा—कहाँ जाती है?

"मास्टर साहब से कहने।"

"मास्टर साहब के पास जाने की ज़रूरत नहीं। तू मुनीबजी को बुला ला।"

प्रमीला मुनीब को बुला लाई। माधवी ने उनसे कह दिया—मास्टर साहब का चश्मा खो गया है। अच्छा-सा देखकर उनके लिए एक चश्मा ला दीजिए।

मुनीब के चले जाने पर माधवी ने मनोरमा को पत्र लिखना शुरू किया। पत्र के अन्त में यह भी लिख दिया—

'प्रमीला को पढ़ाने-लिखाने के लिए बाबूजी ने एक मास्टर रक्खा है। उसे सयाना सिनदार भी कह सकते हैं, और छोटा-सा लड़का भी। मैं समझती हूँ कि उसने अब की ही पहले-पहल परदेश में पैर रक्खा है, पहले कभी वह घर से बाहर नहीं निकला। वह दुनिया की कोई बात नहीं जानता। उसकी देख-रेख रखना, उसकी ख़बर लेते रहना बड़ा ज़रूरी है; नहीं तो घड़ी भर भी उसका काम नहीं चल सकता। वह आप अपनी सहायता या सेवा करना जानता ही नहीं। मेरा आधे से अधिक समय तो वही ले लेता है। तुम लोगों को चिट्ठी-पत्री लिखूँ तो कब? इधर जल्दी ही अगर तुम्हारा यहाँ आना हुआ तो मैं तुम्हें इस अकर्मण्य आदमी के दर्शन करा दूँगी। ऐसा अपाहिज, भुलक्कड़ और लापर्वाह आदमी तुमने अपनी ज़िन्दगी में न देखा होगा। खाने को दे दीजिए तो खा लेगा, अगर न दीजिए तो चुपचाप भूखा-प्यासा सो रहेगा। शायद दिन भर में कभी उसे इसका ख़याल भी न होगा कि उसने भोजन किया है या नहीं! मतलब यह कि वह ख़ुद एक दिन भी अपना काम नहीं चला सकता। मैं सोचती हूँ कि ऐसे आदमी भी दुनिया में पड़े हैं! मैं कहती हूँ, ऐसे आदमी घर छोड़कर परदेश जाते ही क्यों हैं! सुनती हूँ, इस आदमी के माँ-बाप ज़िन्दा हैं; मगर मुझे तो जान पड़ता है कि उनका कलेजा पत्थर का है! मैं तो, जान पड़ता है, ऐसे आदमी को आँख-ओट नहीं कर सकती।

मनोरमा ने दिल्लगी करके इस पत्र के उत्तर में लिख भेजा—तुम्हारी चिट्ठी में और-और समाचारों के साथ यह समाचार भी पढ़ने को मिला कि तुमने अपने घर में एक बन्दर पाल रक्खा है। और, तुम उसकी सीतादेवी बन बैठी हो। मगर, फिर भी, तनिक सावधान रहना, यही मेरा कहना है।—इति मनोरमा।

पत्र पढ़कर माधवी के चेहरे पर कुछ सुर्खी दौड़ गई। उसने इसके उत्तर में लिखा—तुम्हारा मुँह तो भाड़ है। तुम इतना भी नहीं जानती, तुमको यह भी शऊर नहीं कि किसके साथ कैसी हँसी करनी चाहिए।

"प्रमीला, तेरे मास्टर साहब का यह नया चश्मा कैसा है?"

"बहुत अच्छा।"

"तूने यह कैसे जाना?"

"मास्टर साहब यह चश्मा लगाकर खूब अच्छी तरह किताब पढ़ लेते हैं, इसी से मैंने समझा कि चश्मा अच्छा है।"

"उन्होंने खुद इस बारे में अच्छा-बुरा कुछ नहीं कहा?"

"नहीं।"

"एक शब्द भी नहीं? ठीक है या कैसा है, पसन्द है या नापसन्द—कुछ भी नहीं?"

"कुछ भी नहीं कहा।"

हर दम हँसमुख रहनेवाली माधवी का मुख-मण्डल जैसे क्षण भर के लिए मलिन हो गया। किन्तु तत्काल वह भाव
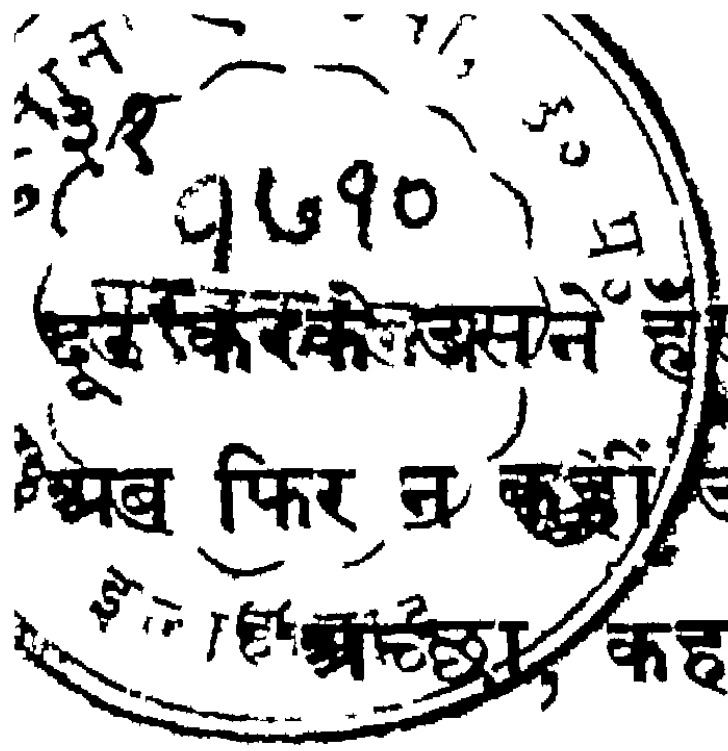
दूर करके उसने हँसकर कहा—अपने मास्टर से कह देना कि अब फिर न कहीं उसे खो दें।

"अच्छा, कह दूँगी।"

"दुर पगली, यह भी कोई कहने की बात है! उन्हें शायद कुछ बुरा लगे।"

"तो फिर कुछ न कहूँगी?"

"नहीं।"

शिवचन्द्र माधवी के बड़े भाई का नाम था। माधवी ने एक दिन उससे कहा—दादा, प्रमीला के मास्टर दिन-रात क्या पढ़ा करते हैं—तुम्हें कुछ मालूम है?

शिवचन्द्र बी० ए० में पढ़ता है। उसकी दृष्टि में इस श्रेणी के छात्रों को पढ़ानेवाले मास्टरों की कुछ वक़त ही नहीं। अतएव उसने उपेक्षा का भाव दिखाते हुए कहा—नाटक और नाविल पढ़ा करता है, और क्या पढ़ेगा?

माधवी को इस पर विश्वास नहीं हुआ। उसने प्रमीला के हाथों, छिपे तौर से, सुरेन्द्र की एक पुस्तक मँगवाकर अपने दादा के हाथ में दी, और कहा—देखो, यह तो मुझे नाटक या नाविल नहीं जान पड़ता।

शिवचन्द्र ने शुरू से आख़ीर तक उलट-पुलटकर देखा, मगर वह कुछ समझ न सका कि कौन-सी, किस कोटि की किताब है। उसने केवल इतना समझ लिया कि उसे इसके

विषय का ज्ञान रत्ती भर भी नहीं है, और यह कोई गणित की पुस्तक है।

मगर छोटी बहन के आगे अपनी शान मिटाना उसने पसन्द नहीं किया। शायद कोई भी न करता। बोला—यह हिसाब की किताब है। स्कूल में छोटे दर्जों में पढ़ाई जाती है।

माधवी का मुँह उतर गया। उसने फिर पूछा—यह किसी ऊँचे दर्जे की किताब नहीं है? कालेज में नहीं पढ़ी जाती?

शिवचन्द्र जैसे सूख गया। मगर मुँह से उसने यही कहा—नहीं, नहीं। यह भी कोई किताब है!

शिवचन्द्र उस दिन से चौकन्ना हो गया। वह मन ही मन डरता था कि किसी समय सुरेन्द्र उससे कोई सवाल न कर बैठे, कहीं इस तरह उसकी क़लई न खुल जाय, और फिर पिता के हुक्म से उसे भी कहीं सबेरे के पहर प्रमीला के साथ ही कापी और पेंसिल लेकर इसी मास्टर के पास पढ़ने के लिए बैठना पड़े! इसी से वह सुरेन्द्र से छड़कता-सा रहता था।

कुछ दिनों के बाद एक दिन माधवी ने पिता से कहा—बाबूजी, मैं कुछ दिनों के लिए काशी जाऊँगी।

ब्रजबाबू चिन्तित हो उठे। कहने लगे—यह कैसे हो सकता है बिटिया? तुम काशी चली जाओगी तो इस घर की दशा क्या होगी? यहाँ का काम कैसे चलेगा?

माधवी ने हँसकर कहा—मैं तो लौट आने को कहती हूँ बाबूजी! एकदम थोड़े जाऊँगी।

माधवी हँसने लगी। मगर उधर उसके पिता की आँखों में आँसू भर आये। माधवी को समझ पड़ा कि उसको यह कहना उचित नहीं था। उसने बात सँभालने के लिए फिर कहा—बाबूजी, मैं सिर्फ़ कुछ दिन घूम-फिरकर लौट आऊँगी।

"अच्छी बात है, हो आओ—लेकिन बेटी, यहाँ का काम नहीं चलेगा।"

"क्या मेरे बिना सब काम बन्द हो जायँगे?"

"काम तो न बन्द हो जायँगे बेटी, होगा सभी कुछ। लेकिन 'पतवार' टूट जाने पर धारा में, चढ़ाव में, पड़ी हुई नाव जैसे चलती है वैसे ही इस घर का काम भी चलेगा।"

किन्तु माधवी का काशी जाना बहुत ज़रूरी था। वहाँ उसकी विधवा ननद अपने एकलौते लड़के के साथ रहती है। उसे एक दफ़े देखने जाना ही है।

काशी-यात्रा के दिन माधवी ने हर एक आदमी को अपने पास बुलाकर सबको सबके काम समझाये और सौंप दिये। बूढ़ी टहलुई को बुलाकर अपने पिता, भाई और बहन की सेवा करने और ताक लेने के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया। किन्तु मास्टर साहब की ख़बर लेने का काम किसी को नहीं सौंपा—उनकी देखभाल करने या उनकी ताक लेने

के लिए किसी से नहीं कहा। वह भूल नहीं गई थी, जान-बूझकर ही नहीं कहा-सुना। इन दिनों वह मास्टर से कुछ चिढ़ गई थी। माधवी ने उसकी बड़ी ख़ातिर की, उसको किसी तरह का कष्ट नहीं होने दिया; मगर यह कैसा जड़ मनुष्य है; इसने ज़रा ज़बान हिलाकर भी कृतज्ञता नहीं प्रकट की! इसी लिए माधवी परदेस जाकर इस अकर्मण्य, संसार से अनभिज्ञ, उदासीन उजड्ड आदमी को जता देना चाहती है कि वह भी एक मनुष्य थी। कुछ थोड़ी-सी दिल्लगी करने में दोष क्या है? उसकी अनुपस्थिति में इस आदमी के दिन किस तरह कटते हैं, यह देख लेने में हानि क्या है? यही कारण था कि सुरेन्द्र के सम्बन्ध में कुछ देखने-सुनने या करने-धरने के लिए वह किसी से कुछ नहीं कह गई।

सुरेन्द्रनाथ एक हिसाब हल कर रहा था। प्रमीला ने कहा—'दिदिया तो कल रात को काशी गईं।' सुरेन्द्र के कानों को कुछ ख़बर ही न हुई। लेकिन तीन दिन के बाद उसने देखा कि दस बजते ही खाने के लिए तक़ाज़े पर तक़ाज़ा नहीं आता, किसी दिन एक या दो भी बज जाते हैं; नहाने के बाद धोती बदलते समय जान पड़ता है, अब धोती उतनी साफ़ नहीं है; सबेरे जलपान का सामान पहले की तरह कई तरह का और ताज़ा बनकर नहीं आता; रात को गैस की बत्ती बुझाने कोई नहीं आता—पढ़ते-पढ़ते रात के दो-तीन बज जाया करते हैं; तड़के आँखें नहीं खुलतीं, उठते-उठते

बहुत दिन चढ़ आता है, दिन भर ख़ुमारी से भरी आँखें भारी बनी रहती हैं, और शरीर में जैसे थकान बनी रहती है। तब मास्टर को जान पड़ा कि इस घर में कुछ परिवर्तन हो गया है। जब गरमी लगती है तभी आदमी को पंखे की तलाश या चाह हुआ करती है। सुरेन्द्र ने पोथी पढ़ते-पढ़ते सिर उठाकर पूछा—प्रमीला, बड़ी दीदी क्या आजकल यहाँ नहीं हैं?

"नहीं, काशी गई हैं।"

"इसी से!"

दो दिन बाद फिर एकाएक प्रमीला की ओर देखकर सुरेन्द्र ने कहा—बड़ी दीदी कब तक आवेंगी?

"एक महीने के बाद।"

सुरेन्द्र फिर पुस्तक पढ़ने में लग गया। पाँच दिन और बीत गये। सुरेन्द्र ने पेंसिल को पुस्तक के ऊपर रख दिया और कहा—"प्रमीला, महीने में अब कितने दिन बाक़ी हैं भला?" प्रमीला—"अभी बहुत दिन हैं।" पेंसिल उठाकर सुरेन्द्र ने ऐनक उतारी। वह उसके ताल पोंछकर साफ़ करने लगा। इसके बाद फिर ऐनक लगाकर पुस्तक की ओर ताकने लगा।

दूसरे दिन बोला—प्रमीला, बड़ी दीदी को तुम चिट्ठी लिखती हो न?

"लिखती क्यों नहीं हूँ।"

"जल्दी चली आने के लिए नहीं लिखतीं ?"

"नहीं।"—सुरेन्द्र ने हलकी-सी साँस छोड़कर धीरे-धीरे कहा—वही तो।

प्रमीला ने कहा—मास्टर साहब, बड़ी दीदी आ जायँ तो बहुत अच्छा हो, क्यों न ?

"हाँ, बहुत अच्छा हो।"

"आने के लिए चिट्ठी में लिख दूँ क्या ?"

सुरेन्द्र ख़ुशी से खिल उठा। बोला—लिख दो।

"आपका भी हाल-चाल लिख दूँ ?"

"लिख देना।"

"लिख देना" कहने में सुरेन्द्र को कुछ भी संकोच नहीं हुआ। क्योंकि दुनिया का कोई अदब-क़ायदा उसका जाना न था। बड़ी दीदी से चले आने के लिए उसका अनुरोध करना रीति-विरुद्ध है, यह ख़याल ही उसके मन में नहीं आया। जिसके मौजूद न होने से उसे बड़ी तकलीफ़ होती है, जिसके बिना उसका काम नहीं चलता, उससे आने के लिए कहने में उसे कोई दोष नहीं देख पड़ा।

संसार के बीच जिस व्यक्ति में कौतूहल कम है उसे सर्व-साधारण मनुष्यों के समाज से कुछ बाहर समझना चाहिए। जिस दल में साधारण मनुष्य विचरण करते हैं उस दल में मिलकर रहना उसके लिए असम्भव होता है। साधारण लोगों के मत से उसका मत नहीं मिलता। सुरेन्द्र के स्वभाव

में कौतूहल की मात्रा बहुत ही कम थी। सुरेन्द्र का यह स्वभाव था कि जितना प्रयोजन होता है उतना ही वह जानना चाहता है। प्रयोजन के घेरे के बाहर अपनी इच्छा से वह एक पग भी नहीं जाना चाहता। इसके लिए उसे समय भी नहीं मिलता। इसी से बड़ी दीदी के बारे में उसे कुछ भी अभिज्ञता न थी। इस परिवार में उसके इतने दिन बीते, लगभग तीन महीने से बड़ी दीदी के ऊपर अपना सब भार छोड़कर वह बड़े सुख और आराम से रहा किन्तु कभी उसने यह नहीं पूछा कि यह बड़ी दीदी कैसी हैं; कितनी बड़ी हैं, उनकी अवस्था कितनी है, वह देखने में कैसी हैं, उनमें क्या-क्या और कितने गुण हैं, यह कुछ भी उसे नहीं मालूम। यह कुछ जानने की उसे इच्छा ही नहीं हुई, इस बारे में पूछ-ताछ करने का कभी उसे ख़याल ही नहीं आया। आदमी को ऐसे आवश्यक और हितैषी व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ जानने की एक दफ़े भी तो इच्छा या कौतूहल होना स्वाभाविक होने पर भी सुरेन्द्र को इच्छा या कौतूहल कुछ भी आज तक नहीं हुआ।

सभी बड़ी दीदी कहते हैं, वह भी कहता है। सभी माधवी से स्नेह और आदर पाते हैं, वह भी पाता है। वे सबका ख़याल रखती हैं, उसका भी रखती हैं। दुनिया भर की सभी चीज़ें माधवी के पास रक्खी हैं, जो व्यक्ति कुछ चाहता या माँगता है, वही पाता है। सुरेन्द्र भी अपने लिए

आवश्यक चीज़ें उनसे माँग लेता है। इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? मेघ का काम है पानी बरसाना और बड़ी दीदी का काम है लोगों का स्नेहपूर्वक आदर करना, सबकी खबर लेना। जब वर्षा होती है तब जो कोई हाथ फैलाता है उसी को पानी मिल जाता है। उसी तरह बड़ी दीदी के आगे हाथ फैलाने से सभी को अभीष्ट पदार्थ अवश्य मिल जाता है। शायद माधवी मेघ के समान ही अन्ध है; उसके न कोई कामना है न आकाङ्क्षा। सुरेन्द्र ने माधवी के सम्बन्ध में साधारणतः इसी तरह की एक धारणा कर रक्खी थी। आने के बाद से ही उसने जो धारणा बना रक्खी थी वह आज तक वैसी ही बनी है। हाँ, इस काशी जाने की घटना के बाद से उसने केवल इतना ही अधिक समझ पाया है कि बड़ी दीदी के बिना उसका गुज़र घड़ी भर भी नहीं हो सकता।

सुरेन्द्र जब अपने घर पर था तब अपने पिता को जानता था, विमाता को जानता था। उनका कर्त्तव्य क्या है, यह भी समझता था। किन्तु वहाँ बड़ी दीदी की पदवी के अधिकारी किसी व्यक्ति से उसका परिचय न था। यहाँ आकर जब परिचय हुआ तब उसको यों ही समझ लिया। वह बड़ी दीदी नाम के अधिकारी मनुष्य की सूरत से परिचित नहीं; वह नहीं जानता कि बड़ी दीदी का आकार-प्रकार कैसा क्या है। वह केवल नाम ही को जानता-पहचानता है। नाम का अधिकारी मनुष्य उसका कोई नहीं, नाम ही सब कुछ है।

लोग जैसे अपने इष्टदेव के रूप को नहीं देख पाते, केवल उसके नाम को लिखे रखते हैं, नाम ही को जपते हैं, दुःख और कष्ट में उसी नाम का उच्चारण कर उसके आगे अपना हृदय खोलकर रख देते हैं, घुटने टेककर करुणा की प्रार्थना करते हैं—दया की भिक्षा माँगते हैं, आँखों में आँसू भर आते हैं तो उन्हें पोंछ डालकर शून्य दृष्टि से जैसे किसी को देखना चाहते हैं किन्तु कुछ भी नहीं देख पड़ता, जीभ केवल दो-एक अस्पष्ट शब्द उच्चारण करके रुक जाती है; उसी तरह सुरेन्द्र ने भी दुःख-कष्ट पाकर अस्फुट स्वर में उच्चारण किया—"बड़ी दीदी।"

५

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था, केवल पूर्व दिशा में लाली फैल चली थी। प्रमीला ने आकर सो रहे सुरेन्द्रनाथ के गले से लिपटकर पुकारा—"मास्टर साहब!" सुरेन्द्र ने भी आलस्य से बन्द हुई जा रही आँखें ज़रा खोलकर कहा—क्या है प्रमीला?

प्रमीला ने कहा—"बड़ी दीदी आ गई।" सुरेन्द्र चट उठ बैठा। प्रमीला का हाथ पकड़कर बोला—चलो, देख आवें।

नहीं कह सकते, यह देखने की इच्छा उसके मन में कैसे उत्पन्न हुई। यह भी समझ में नहीं आता कि इतने दिनों बाद आज प्रमीला का हाथ पकड़कर आँखें मलते-मलते वह क्यों

भीतर की ओर चल खड़ा हुआ। किन्तु कारण चाहे जो हो, वह प्रमीला का हाथ पकड़े घर के भीतर उपस्थित हुआ। इसके बाद सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर छत पर पहुँचा। माधवी के कमरे के बाहर, दरवाज़े के पास, खड़े होकर उसने पुकारा—बड़ी दीदी!

माधवी का ध्यान दूसरी ओर था, वह कोई काम कर रही थी। उसने अभ्यास-वश प्रमीला को समझकर उत्तर दिया—क्या है बहन?

प्रमीला ने कहा—मास्टर साहब—

प्रमीला और सुरेन्द्र तब तक भीतर दाखिल हो चुके थे। माधवी देखते ही हड़बड़ा कर उठी। वह लम्बा घूँघट खींचकर एक ओर सिमटकर खड़ी हो गई। सुरेन्द्र कह चला—"बड़ी दीदी, तुम्हारे कारण मुझे बड़ा कष्ट—" माधवी ने घूँघट के भीतर लज्जा के मारे दाँतों से जीभ काटकर मन ही मन कहा—छी-छी!—

"तुम्हारे चले जाने से—"

माधवी ने अपने मन में कहा—कैसी लज्जा की बात है! प्रकट में धीरे-धीरे कहा—प्रमीला, मास्टर साहब से कह दे, बाहर जावें।

प्रमीला बालिका होने पर भी अपनी बहन का व्यवहार देखकर इतना समझ गई कि यह काम ठीक नहीं हुआ। उसने कहा—चलिए मास्टर साहब—

सुरेन्द्र कुछ देर अप्रतिभ-सा खड़ा रहा। उसके बाद बोला—"चलो।" वह इससे अधिक कुछ कहना नहीं जानता था। उसने ज़्यादा बातचीत नहीं की। बात यह थी कि दिन भर बादल घिरे रहने के बाद सूर्य के निकलने पर जैसे एकाएक उधर लोगों की आँख उठ जाती है—नज़र आप ही आप चली जाती है, क्षण भर के लिए जैसे यह सुध ही नहीं रहती कि सूर्य की ओर ताकना न चाहिए, या उधर ताकने से आँखों में पीड़ा होने लगेगी, इसका ख़याल नहीं रहता—वैसे ही सुरेन्द्र भी महीने भर परदेश में रहने के बाद आई हुई बड़ी दीदी को बड़ी ख़ुशी और चाव के साथ देखने गया था। उसे यह ख़बर ही न थी कि इसका फल ऐसा होगा।

उसी दिन से सुरेन्द्र की ख़ातिर में कुछ कमी देख पड़ने लगी। माधवी जैसे कुछ झेंपने लगी। बिन्दो मौसी इस बात पर शायद एक दिन कुछ हँसी कर बैठी थी। सुरेन्द्र भी कुछ संकुचित हो उठा। आजकल सुरेन्द्र को देख पड़ने लगा कि बड़ी दीदी का असीम भाण्डार जैसे कुछ सीमाबद्ध हो गया है। बहन का स्नेह और माता का वात्सल्य जैसे अब उसको स्पर्श नहीं करता—दूर ही दूर रहकर हट जाता है।

एक दिन सुरेन्द्र ने प्रमीला से पूछा—जान पड़ता है, बड़ी दीदी मुझ पर नाराज़ हैं। क्यों न?

"जी हाँ।"

"क्यों भला?"

"आप उस दिन इस तरह घर के भीतर क्यों चले गये थे?"

"भीतर नहीं जाना चाहिए—क्यों?"

"इस तरह कहीं कोई चला जाता है? दीदी बहुत ख़फ़ा हैं।"

सुरेन्द्र ने पुस्तक बन्द करके कहा—वही तो—

इसके बाद एक दिन दोपहर के समय बादल घिर आये, और बड़े ज़ोर से पानी बरसने लगा। ब्रजराज बाबू आज दो दिन से घर में नहीं हैं, इलाक़े पर दौरा करने गये हैं। माधवी को कुछ काम न करना था—फ़ुरसत थी। प्रमीला बड़ा ऊधम मचा रही थी। माधवी ने उसको डाँटकर कहा—जा, अपनी किताब तो ला। देखूँ, तूने कितना पढ़ा है।

प्रमीला एकदम सिटपिटा गई। माधवी ने फिर कहा—लाती क्यों नहीं?

प्रमीला ने कहा—दिदिया, रात को पूछ लेना, अभी खेलने दो।

माधवी ने कहा—नहीं, अभी ला।

तब अत्यन्त दुःख के साथ प्रमीला किताब लेने गई। लाकर बोली—"मास्टर साहब तो आजकल कुछ पढ़ाते-लिखाते ही नहीं, वे आप ही पढ़ा करते हैं।" माधवी पिछला पाठ पूछने बैठी। आदि से अन्त तक अनेक प्रश्न करने पर उसको मालूम हो गया कि मास्टर ने सचमुच कुछ पढ़ाया-लिखाया नहीं है। उलटे प्रमीला को पहले जो कुछ पढ़ाया-

लिखाया गया था वह भी, मास्टर रखने के उपरान्त, इन तीन-चार महीनों में, धीरे-धीरे सब भूल गया है। माधवी ने खीझकर बिन्दो को बुलाया, और उससे कहा—जाकर मास्टर साहब से पूछ आ कि उन्होंने इतने दिन तक क्या किया? प्रमीला को एक भी अक्षर नहीं पढ़ाया—यह क्यों?

बिन्दो जिस समय पूछने गई उस समय सुरेन्द्र एक हिसाब लगा रहा था—उसे हल करने में हलाकान हो रहा था। बिन्दो ने पूछा—"मास्टर साहब, बड़ी दीदी कहती हैं कि आपने छोटी बिटिया को अब तक कुछ पढ़ाया क्यों नहीं?" मास्टर ने जैसे सुना ही नहीं। अब की बिन्दो ने ऊँची आवाज़ से पुकारा—मास्टर साहब!

"क्या?"

"बड़ी दीदी कहती हैं—"

"क्या कहती हैं?"

"छोटी बिटिया को आपने कुछ पढ़ाया क्यों नहीं?"

अन्यमनस्क हो रहे सुरेन्द्र ने उत्तर दिया—"पढ़ाना अच्छा नहीं लगता।" बिन्दो ने मन में कहा—वाह वाह! उसने जाकर यही माधवी से कह दिया। माधवी को गुस्सा चढ़ आया। उसने नीचे उतरकर, किंवाड़े की आड़ में खड़ी होकर, बिन्दो से कहलाया—"आपने छोटी बिटिया को बिलकुल कुछ पढ़ाया ही नहीं, यह क्यों?" दो-तीन दफ़े यही प्रश्न करने के बाद उत्तर मिला—मुझ से न हो सकेगा।

माधवी ने सोचा, यह कैसी बात है!

बिन्दो ने पूछा—तो फिर आप यहाँ हैं किसलिए?

"यहाँ न रहूँ तो जाऊँ कहाँ?"

"तो फिर पढ़ाते क्यों नहीं?"

अब की सुरेन्द्र को होश आया। उसने मुख़ातिब होकर कहा—"हाँ, क्या कहती हो?" बिन्दो इतनी देर से जो कह रही थी वही फिर एक बार कह दिया। तब सुरेन्द्र ने कहा—प्रमीला तो रोज़ पढ़ती है।

"वह तो पढ़ती है; लेकिन आप क्या देखते हैं?"

"नहीं, मुझे देखने-भालने का समय नहीं मिलता।"

"तो फिर इस घर में आप रहते किसलिए हैं?" सुरेन्द्र चुप होकर सोचने लगा।

"तो आप पढ़ा न सकेंगे?"

"नहीं, पढ़ाना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

माधवी ने भीतर से ख़ुद ही कहा—"पूछ तो बिन्दो, फिर इतने दिनों से झूठ बोलकर यहाँ क्यों रहते हैं?" बिन्दो ने यही कह सुनाया। सुनकर सुरेन्द्र की गणित की समस्या का जाल एकदम छिन्न-भिन्न हो गया। उसे थोड़ा-सा दुःख भी हुआ। दम भर सोचकर उसने कहा—वही तो! बड़ी भूल हुई!

"चार महीने से लगातार बराबर भूल ही होती रही?"

"हाँ, वही तो देख पड़ता है। वास्तव में बात यह है कि इस ओर मेरा उतना ध्यान ही न था।"

दूसरे दिन प्रमीला पढ़ने नहीं आई। सुरेन्द्र ने भी उस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। उसके बाद तीसरे दिन भी वह अनुपस्थित ही रही। वह दिन योंही गुज़र गया।

तीसरे दिन प्रमीला को न देख पाकर सुरेन्द्र ने एक नौकर से कहा—प्रमीला को बुला ला।

नौकर ने भीतर से लौटकर कहा—छोटी बिटिया अब आप से नहीं पढ़ेंगी।

"तो किससे पढ़ेंगी?"

नौकर ने अपनी बुद्धि ख़र्च करके कहा—नया मास्टर रक्खा जायगा।

उस समय नव बज चुके थे। कुछ देर तक सोच-विचार-कर सुरेन्द्र ने दो-तीन किताबें उठाकर बग़ल में दबाईं और उठ खड़ा हुआ। चश्मा उतारकर ख़ाने के भीतर रखकर टेबिल पर रख दिया, और फिर धीरे-धीरे चल दिया।

जाते देखकर नौकर ने पूछा—मास्टर साहब, इस वक़्त आप कहाँ जाते हैं?

"बड़ी दीदी से कह देना—मैं जाता हूँ।"

"तो अब आप न आवेंगे?"

सुरेन्द्र ने यह प्रश्न सुना ही नहीं। बिना ही कुछ उत्तर दिये वह फाटक के बाहर जा पहुँचा। दोपहर के बाद दो बज गये, मगर सुरेन्द्र लौटकर नहीं आया। तब नौकर ने माधवी को ख़बर दी कि मास्टर साहब चले गये।

"कहाँ गये ?"

"यह तो मैं जानता नहीं। नव बजे के वक़्त गये थे। जाते वक़्त मुझसे कह गये थे कि बड़ी दीदी से कह देना, मैं जाता हूँ।"

"यह क्या! बिना खाये-पिये ही चले गये?"

माधवी चिन्तित हो उठी। उसने स्वयं सुरेन्द्र की कोठरी में आकर देखा, सब सामान उसी तरह पड़ा हुआ है। टेबिल के ऊपर चश्मा तक खाने में रक्खा है। केवल कुछ किताबें नहीं हैं।

शाम हो गई। रात भी हुई। मगर सुरेन्द्र न आया। दूसरे दिन माधवी ने दो नौकरों को बुलाकर कहा—"तुम अगर मास्टर को खोजकर लौटा लाओगे तो दस रुपये इनाम के मिलेंगे।" इनाम के लालच से नौकर दौड़-धूप में लग गये। किन्तु उस दिन शाम को लौटकर उन्होंने कहा—कहीं पता नहीं लगा।

प्रमीला ने रोते-रोते कहा—बड़ी दिदिया, मास्टर साहब क्यों चले गये?

माधवी ने उसे बहलाकर कहा—बाहर जा, रोती क्यों है।

धीरे-धीरे दिन बीतने लगे। जितने दिन बीतते जाते थे उतनी ही माधवी की घबराहट बढ़ती जाती थी। बिन्दो ने कहा—बड़ी दीदी, जाने भी दो। इतना ढूँढ़ने की ज़रूरत ही क्या है? इतने बड़े कलकत्ता शहर में क्या दूसरा मास्टर न मिलेगा?

माधवी ने बिगड़कर कहा—दूर हो यहाँ से! एक आदमी, जिसके पास एक पैसा भी नहीं, ख़ाली हाथ चला गया है, और तू कहती है, उसको इतना ढूँढ़ने की क्या ज़रूरत है!

"यह तुमने कैसे जाना कि उनके पास एक पैसा भी नहीं है?"

"मैं ख़ूब जानती हूँ। तुझे इन बातों से क्या मतलब? अपना काम कर।"

बिन्दो चुप हो गई। एक-एक करके जब सात दिन बीत गये और सुरेन्द्र लौटकर न आया, न उसका कुछ पता ही मिला, तब माधवी एक प्रकार से खाना-पीना ही छोड़ बैठी। उसे ख़याल होता था कि सुरेन्द्र भूखा-प्यासा कहीं मारा-मारा फिरता होगा। जो आदमी घर में भी कोई चीज़ माँगकर खाना नहीं जानता वह किसी अपरिचित से, किसी ग़ैर से, किस तरह माँग सकता है? माधवी की यह दृढ़ धारणा थी कि सुरेन्द्र के पास कुछ ख़रीदकर खाने-पीने के लिए एक पैसा भी नहीं है; साथ ही भीख माँगकर पेट भर लेने का शऊर भी नहीं है; इसी लिए वह छोटे बच्चे की तरह, असहाय अवस्था में, शायद किसी फ़ुटपाथ के ऊपर, सड़क के किनारे, बैठा रोता होगा, अथवा किसी पेड़ के तले सिरहाने किताबें रखकर पड़ा सो रहा होगा।

ब्रजराज बाबू ने घर लौटकर सब हाल सुना। उन्होंने माधवी से कहा—"काम तो यह अच्छा नहीं हुआ बेटी।" माधवी ने बड़ी मुशकिल से उमड़े हुए आँसुओं को रोका।

इधर सुरेन्द्र का क्या हाल हुआ, सो सुनिए। तीन दिन तो उसने रास्तों में घूम-फिरकर निराहार रहकर बिताये। पैसा पास न होने पर भी पम्प का पानी मुफ्त मिल सकता है। इसी से भूख का जब ज़ोर जान पड़ता था तब वह चुल्लू लगा-कर पेट भर पम्प का पानी पी लेता था।

एक दिन वह रात को कालीघाट की ओर जा रहा था। हाथ-पैरों में सत्त न था, सारा शरीर सनसना रहा था, फिर भी वह चला जा रहा था। उसने किसी से सुना था कि वहाँ खाने को मिलता है। एक तो योंही अँधेरी रात थी, उस पर बादल घिरे हुए थे। चौरंगी के मोड़ पर पहुँचते ही उसके ऊपर एक गाड़ी आ पड़ी। ख़ैरियत यह हुई कि गाड़ी के कोचवान ने किसी तरह फ़ुर्ती के साथ रास खींचकर घोड़ों को सँभाल लिया। इससे सुरेन्द्र की जान बच गई। लेकिन फिर भी छाती और पसलियों में उसके बड़ी चोट लगी। सुरेन्द्र वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा। पुलीस के सिपाही ने उसे एक गाड़ी में लादकर अस्पताल पहुँचा दिया। चार-पाँच दिन बेहोशी की हालत में पड़े रहने के बाद छठे दिन, रात को, आँखें खोलते ही पहले उसके मुँह से यही शब्द निकले—बड़ी दीदी!

मेडिकल कालेज का एक छात्र उस रात को अस्पताल में ड्यूटी पर था। यह शब्द सुनते ही वह पास आ गया। उससे सुरेन्द्र ने पूछा—बड़ी दीदी आई हैं?

उत्तर मिला—कल तड़के आवेंगी।

उसके दूसरे दिन सुरेन्द्र अच्छी तरह होश-हवास में रहा; लेकिन उसने फिर बड़ी दीदी के बारे में कुछ नहीं पूछा। वह दिन भर घोर ज्वर में पड़ा तड़पता रहा। शाम होने पर एक आदमी से उसने पूछा—क्यों जी, मैं क्या अस्पताल में हूँ?

"हाँ।"

"क्यों?"

"आप एक गाड़ी की झपेट में आ गये थे।"

"मेरे बच जाने की आशा है भला?"

"पूरी आशा है।"

दूसरे दिन मेडिकल-कालेज के उसी विद्यार्थी ने, जिससे पहले दिन पूर्वोक्त प्रश्नोत्तर हुआ था, पास आकर सुरेन्द्र से पूछा—यहाँ आपका कोई अपना आदमी भी है कहीं?

"कोई नहीं।"

"तो फिर उस दिन, रात को, आप किसे पुकार रहे थे? क्या वे यहाँ कहीं रहती हैं?"

"हैं तो अवश्य, लेकिन वे इस जगह आ नहीं सकेंगी। अच्छा, क्या आप मेरे पिताजी को ख़बर पहुँचा सकते हैं?"

"पहुँचा सकता हूँ।"

सुरेन्द्र ने पिता का पता-ठिकाना बता दिया। उस छात्र ने उसी दिन पत्र लिखकर रवाना कर दिया। इसके बाद

बड़ी दीदी का पता लगाने के लिए उसने फिर पूछा—यहाँ स्त्रियाँ भी आ सकती हैं। हम लोग पर्दानशीन औरतों के लिए इन्तजाम कर देते हैं। आपकी बड़ी बहन का पता मालूम हो जाय तो मैं उनको भी ख़बर पहुँचा सकता हूँ।

सुरेन्द्र ने कुछ देर तक सोचकर ब्रज बाबू का पता-ठिकाना बतला दिया।

वह छात्र बोला—मेरा डेरा ब्रज बाबू के घर के पास ही है। मैं आज ही उन्हें आपका हाल बतलाऊँगा। अगर उनकी इच्छा होगी तो वे देखने आवेंगी।

सुरेन्द्र कुछ नहीं बोला। उसने अपने मन में समझ लिया था कि बड़ी दीदी का यहाँ आना असम्भव है। उस छात्र ने दया करके ब्रज बाबू को फ़ौरन् ख़बर दे दी। ब्रज बाबू सुनकर चौंक उठे। उन्होंने घबराकर पूछा—बच तो जायगा न?

छात्र ने कहा—यह तो निश्चित है कि उनकी जान के लिए कुछ ख़तरा नहीं है।

ब्रज बाबू ने भीतर जाकर लड़की से कहा—माधवी, मैं जो सोच रहा था वही हुआ। सुरेन्द्र गाड़ी के नीचे कुचल गया। अब वह अस्पताल में है।

सुनते ही माधवी के सारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग सिहर उठे। पिता ने कहा—"सुना है, उसने होश आते ही बड़ी दीदी कहकर तुमको पुकारा था। क्या तुम उसे देखने जाओगी?" इसी समय पास के कमरे में प्रमीला ने न जाने क्या-क्या गिरा

दिया। उसकी झनझनाहट सुनकर माधवी उधर चली गई। कुछ देर बाद लौटकर उसने पिता से कहा—तुम देख आओ बाबूजी; मैं वहाँ न जा सकूँगी।

ब्रज बाबू ने दुःखित होकर कुछ मुसकुराते हुए कहा—वह तो जङ्गली जानवर के समान है—उस पर क्रोध करना बिलकुल बेकार है।

माधवी कुछ नहीं बोली। ब्रज बाबू अकेले ही सुरेन्द्र को देखने गये। उसकी दशा देखकर उन्हें बड़ा दुःख और खेद हुआ। उन्होंने कहा—अच्छा सुरेन्द्र, तुम्हारे माता-पिता को यह ख़बर देदी जाय? तुम्हारी क्या इच्छा है?

"वहाँ ख़बर पहुँचा दी गई है।"

"कुछ डर नहीं है। तुम घबराना नहीं। जल्दी चङ्गे हो जाओगे। तुम्हारे माँ-बाप के आते ही मैं तुमको यहाँ से ले चलने का इन्तिजाम कर दूँगा।"

ब्रज बाबू ने रुपये-पैसे की बात सोचकर फिर कहा—अच्छा तो यह हो कि तुम मुझे अपने पिता का पता बता दो, तो मैं ऐसा प्रबन्ध कर दूँगा जिसमें उन्हें यहाँ जल्दी आने में किसी तरह की असुविधा का सामना न करना पड़े।

ब्रज बाबू के इस कथन का मतलब अच्छी तरह सुरेन्द्र की समझ में नहीं आया। उसने कहा—पिताजी आवेंगे, इसमें भला उन्हें असुविधा क्या होगी?

ब्रज बाबू ने घर आकर माधवी को सारा हाल कह सुनाया।

उसी दिन से ब्रज बाबू नित्य एक बार सुरेन्द्र को देखने अस्पताल जाने लगे। सच तो यह है कि सुरेन्द्र के ऊपर उन्हें एक प्रकार की ममता हो गई थी, वे उसको स्नेह की दृष्टि से देखने लगे थे। एक दिन अस्पताल से लौटकर उन्होंने बेटी से कहा—माधवी, तेरा अनुमान ठीक निकला। सुरेन्द्र के पिता तो धनी पुरुष हैं।

माधवी ने आग्रह के साथ पूछा—यह आपको कैसे मालूम हुआ बाबूजी ?

"उसके पिता एक बड़े नामी वकील हैं। वे कल रात को आ गये।"

माधवी चुप हो रही। पिता ने फिर कहा—सुरेन्द्र अपने घर से भागकर आया था।

"किसलिए ?"

ब्रज०—उसके पिता से आज बातचीत हुई। उन्होंने सारा हाल सुनाया। इसी साल यू० पी० के विश्वविद्यालय में आनर्स के साथ एम० ए० की परीक्षा में सुरेन्द्र पास हुआ है। इसके उपरान्त उसने विलायत जाकर विद्याध्ययन करने की इच्छा प्रकट की तो पिता और माता, दोनों ने नामंजूर किया। बिलकुल ही अन्यमनस्क और परमुखापेक्षी होने के कारण सुरेन्द्र अकेले विलायत की यात्रा करने लायक नहीं है, इसी धारणा के वश होकर पिता उसे भेजने का साहस नहीं कर सके। सुरेन्द्र के रूठकर घर से भाग खड़े होने का यही

कारण हुआ। पिता का इरादा है कि आराम होते ही पुत्र को घर ले जायँगे।

उभर रही साँस को दबाकर, और उमड़े हुए आँसुओं को रोककर माधवी ने कहा—यही अच्छा है।

६

सुरेन्द्र को कलकत्ते से घर गये छः महीने हो गये। इस बीच में माधवी ने अपनी सहेली मनोरमा को केवल एक ही पत्र लिखा था; फिर नहीं लिखा।

कार में दुर्गा-पूजा के अवसर पर मनोरमा मैके आई। वह आते ही माधवी के पीछे पड़ गई। बोली—अपना वह बन्दर तो दिखा।

माधवी ने हँसकर कहा—बन्दर कहाँ से लाऊँ री?

मनोरमा ने माधवी की ठोढ़ी हिलाकर कहा—मैं तो यही देखने दौड़ी आई हूँ कि तेरे इन रँगीले श्रीचरणों के पास वास करनेवाला वह तक़दीर का सिकन्दर बन्दर कैसा है।—वही, जिसे तूने पाला था?

"कब पाला था?"

मनोरमा ने मन्द हास के साथ परिहास के स्वर में कहा—याद नहीं है? अरे वही, जो तेरे सिवा और किसी को नहीं जानता था!

मनोरमा के मतलब को माधवी पहले ही ताड़ गई थी, इसी से धीरे-धीरे उसके चेहरे का रङ्ग उड़ता जा रहा था। तो भी अपने को सँभालकर माधवी बोली—ओह, मास्टर को पूछती है? वे तो आप से चले गये।

"ऐसे रङ्गीन श्रीचरण उसे नहीं मन-भाये?"

माधवी ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया, कुछ बोली नहीं। मनोरमा ने आदर और प्यार के साथ हाथ से सहेली का मुँह अपनी ओर फेरा। आश्चर्य के साथ उसने देखा, उसकी इस दिल्लगी से सहेली की आँखों में आँसू उमड़ पड़े हैं। मनोरमा ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—यह क्या माधवी?

अब और अधिक अपने को सँभालना माधवी के लिए असम्भव हो गया। वह आँखों में आँचल लगाकर रो पड़ी।

मनोरमा के विस्मय की सीमा नहीं रही। सहेली को सान्त्वना देने के लिए समयानुकूल एक शब्द भी उसे न सूझ पड़ा। उसने कुछ देर तक माधवी को रोने दिया। इसके उपरान्त ज़बरदस्ती मुँह पर से आँचल खींचकर अत्यन्त दुःख के साथ उसने कहा—तुम तो मामूली दिल्लगी में ही रोने लगीं बहन! मैं न जानती थी कि इतनी-सी हँसी-दिल्लगी भी तुम नहीं सह सकोगी।

माधवी ने आँखें पोंछते हुए कहा—"मैं विधवा जो हूँ बहन!" इसके बाद दोनों जनी चुपकी हो रहीं। दोनों सहेलियाँ अपने मन में रो रही थीं। मनोरमा रोती थी

माधवी के दु:ख से—उसकी विधवावस्था की व्यथा का अनुभव करके। किन्तु माधवी क्यों रो रही थी? उसके रोने का कारण कुछ और था। इस समय बिना जाने-बूझे मनोरमा ने जो ठट्ठा किया कि 'वह तेरे सिवा और किसी को नहीं जानता था' वही माधवी के मन को मथे डालता था। माधवी ख़ूब अच्छी तरह जानती थी कि यह बात सोलहों आने सच है।—बहुत देर के बाद मनोरमा बोली—लेकिन काम तो यह अच्छा नहीं हुआ।

"कौन काम?"

"यह भी क्या बताने की ज़रूरत है बहन?—मैं सब समझ गई हूँ!"

इतने दिनों से—लगभग छः महीने से—जिस बात को, जिस रहस्य को, माधवी जी-जान से छिपाये हुए थी उसे आज मनोरमा के आगे छिपाना असम्भव हो गया। छिपाने में असमर्थ होने से पकड़ी जाकर माधवी आँचल से मुँह ढककर रोने लगी—बच्चे की तरह फूल-फूलकर रोने लगी।

अन्त को मनोरमा ने कहा—लेकिन यह तो बता, वह चला क्यों गया?

"मैंने ही यहाँ से चले जाने के लिए कहा था।"

"बहुत अच्छा किया, ख़ूब बुद्धिमानी का काम किया।"

माधवी ने देखा, वास्तव में मनोरमा ने कुछ भी नहीं समझ पाया। यह जानकर माधवी ने उसे एक-एक करके

आदि से अन्त तक सारी बातें समझा दीं। इसके बाद कहा—"लेकिन बहन, अगर कहीं मास्टर न बचते तो शायद मैं पागल हो जाती।" मनोरमा ने अपने मन में कहा—इस समय पागल होने में कसर ही क्या है?

उस दिन बहुत ही दुःखित हृदय लिये मनोरमा अपने घर को गई। उसी दिन, रात के वक्त, काग़ज़-क़लम लेकर मनोरमा अपने पति को पत्र लिखने बैठी। पत्र में लिखा—

"तुम ठीक कहते थे कि स्त्री-जाति का कुछ विश्वास नहीं। मैं भी आज इसी को दुहराती हूँ। क्योंकि आज माधवी ने मुझको यही शिक्षा दी है। मैं उसे बचपन से जानती हूँ। वह मेरी साथ खेली सहेली है। मैं उसके रग-रेशे से वाक़िफ़ हूँ, इसी लिए उसे दोष देने की इच्छा नहीं होती। ऐसा करने की हिम्मत नहीं पड़ती कि समूची स्त्री-जाति को दोष दूँ। मैं तो विधाता को ही दोषी ठहराऊँगी। उन्होंने क्यों नारी के हृदय को इतना कोमल बनाया? नारी-हृदय की रचना जल जैसे तरल पदार्थ से क्यों की? विधना ने नारी के सरल हृदय में इतना अधिक स्नेह, प्यार और प्रेम लबालब क्यों भर दिया? किसने ऐसा करने के लिए उनकी ख़ुशामद की थी? चतुर चतुरानन के चरणों में मेरी तो अब यही प्रार्थना है कि भविष्य में स्त्री के हृदय को ज़रा ज़ोरदार और कठिन बनाया करें। और, तुम्हारे श्रीचरणों में यह प्रार्थना है कि मैं बस, इन्हीं पूज्य चरणों में सिर रखकर सानन्द तुम्हारा प्यारा

मुखारविन्द देखते-देखते मरने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ। माधवी को देखने से बड़ा डर लगता है। उसने मेरी ज़िन्दगी भर की धारणा—बद्धमूल विश्वास—को उलट-पुलट दिया है। सच मानो, मेरा भी बहुत अधिक विश्वास न करो। शीघ्र ही आकर अपने साथ ले जाओ।—"

यथासमय यह पत्र मनोरमा के पति ने पाया। उसने इसके उत्तर में लिख भेजा—

"जिसके रूप है वह उसे दिखावेगा ही। जिसके गुण है वह उसे प्रकट करेगा ही। जिसके हृदय में प्रेम-प्रीति है, जो प्यार करना जानता है वह प्यार अवश्य ही करेगा। माधवी-लता रसाल (आम) वृक्ष का आश्रय लेती है, उससे लिपटती है। यही दुनिया की रीति है। इसके लिए तुम या मैं क्या कर सकता हूँ! तुम्हारा मैं ख़ूब विश्वास करता हूँ—उसके लिए तुम कुछ चिन्ता न करना।—"

मनोरमा ने पति का पत्र पाकर पढ़कर माथे से छुआया, और पूज्य पति के पैरों में मानसिक प्रणाम करके उसके उत्तर में लिख दिया—

"माधवी कलमुँही कुल-कलङ्किनी है; विधवा को जो न करना चाहिए वही उसने किया। वह मन में अन्य एक आदमी को प्यार करती है।"

यह पत्र पाकर मनोरमा का पति मन ही मन ख़ूब हँसा। फिर उसने दिल्लगी करते हुए उत्तर में लिख दिया—"माधवी

के कलमुँही और कुल-कलङ्किनी होने में कुछ सन्देह नहीं। क्योंकि विधवा होकर वह मन में और एक आदमी को चाहने लगी है। तुम लोगों के ख़फ़ा होने की बात ही है—विधवा होकर वह क्यों तुम सब सधवाओं के अधिकार में हाथ डालने गई! मगर मैं जब तक जीता हूँ तब तक तुम्हें कुछ चिन्ता न करनी चाहिए। यह बड़ा अच्छा अवसर है; इस मौक़े में तुम बड़े आनन्द और आराम से किसी और एक आदमी को मन ही मन प्यार कर लो। सच पूछो तो तुम यह नई ख़बर देकर मुझे विस्मित या चकित नहीं कर सकीं मनोरमा। मैंने एक जगह एक लता देखी है। वह लगभग एक मील तक धरती में फैलती और लिथड़ती हुई अन्त को जाकर एक पेड़ से लिपट कर उसके ऊपर चढ़ गई। इस समय वह कितने ही पत्तों, पल्लवों और पुष्पों से लदी हुई है। तुम जब यहाँ आओगी तब हम दोनों चलकर उसे देख आवेंगे।"

मनोरमा ने खीझकर इस पत्र का उत्तर नहीं दिया।

इधर माधवी दिनों-दिन दुबली होती जा रही थी। आँखों के नीचे स्याह दाग़ दिखाई देने लगे थे। खिला हुआ मुखड़ा कुछ मुरझाया हुआ था। काम-काज में वह मुस्तैदी, वह उत्साह और वह फुर्ती अब नहीं थी—कुछ-कुछ ढिलाई और शिथिलता देख पड़ती थी। सबका ताक रखने, सब का ख़याल रखने, सबको आदर-यत्न-सेवा आदि से सन्तुष्ट देखने का चाव चित्त में वैसा ही था, बल्कि और अधिक ही

हो गया था; किन्तु काम-काज करने में भूल-चूक हो जाती थी। पहले जैसे माधवी किसी काम में ग़फ़लत नहीं होने देती थी, यथासमय हर एक छोटा या बड़ा काम करने की याद रखती थी, वह बात अब नहीं है; अक्सर भूल हो जाया करती है, ख़याल ही नहीं रहता।

अभी तक सभी उसे बड़ी दीदी कहते हैं, इस समय भी सभी प्रार्थी आश्रित लोग उसी कल्पलता रमणी-रत्न का मुँह ताकते हैं, उसके आगे हाथ फैलाते हैं, और अभीष्ट फल पाते हैं; किन्तु वह तरुणी-लता अब वैसी हरी-भरी, सतेज तथा सरस नहीं है। पुरनिया लोगों के मन में कभी-कभी यह आशङ्का उठ खड़ी होती है कि कहीं यह लता सूख न जाय।

मनोरमा नित्य आती-जाती है। और-और अनेक बातें होती रहती हैं, केवल वही—मास्टर की—चर्चा नहीं छिड़ती। माधवी को इससे दुःख होता है, और यह बात मनोरमा से छिपी नहीं रहती। वह सोचती है, अब इस विषमय विषय की बातचीत बराना ही बेहतर होगा। मनोरमा यह भी सोचती है कि यह अभागिन अगर इसी तरह उसे भूल जाय तो भला हो।

सुरेन्द्र आराम होने पर पिता के साथ घर चला गया। अबकी सौतेली माँ उसकी देख-भाल और ख़बरदारी कुछ कम करने लगी। इसी से सुरेन्द्र के शरीर को कुछ-कुछ आराम

मिलने लगा। लेकिन शरीर अच्छी तरह चङ्गा नहीं होने आता। इसका कारण यही था कि हृदय के भीतर एक काँटा खटकता रहता है, जिसकी व्यथा बहुत अखरती है। रूप और यौवन की आकाङ्क्षा या रस की प्यास अभी तक उस के अन्तःकरण में उत्पन्न नहीं हुई है। इन बातों का विचार ही उसके मन में नहीं उठता। पहले ही की तरह इस समय भी वह अन्यमनस्क रहता है, स्वावलम्ब नहीं सीख सका है। मगर किसके भरोसे रहना चाहिए, कौन उसकी देख-भाल रखने के लिए खुशी से तैयार हो सकेगा, यह अभी तक उसे नहीं सूझ पड़ता। सूझ न पड़ने पर लाचार होकर अपना काम आप कर लेनेवाला भी वह नहीं। इससे वह पराया ही मुँह ताकता रहता है। अन्तर केवल इतना ही हो गया है कि अब पहले की तरह बेमन अन्टसन्ट कर दिया गया काम उसे रुचता नहीं; सभी कामों में जैसे उसे कुछ न कुछ कसर देख पड़ती है, मन नहीं भरता। उसकी सौतेली माता यह सब देख-सुनकर कहा करती हैं—सुरेन्द्र जैसे आजकल बदल गया है।

बीच में एक दिन सुरेन्द्र को बुखार चढ़ आया था। बड़ा कष्ट मिला। आँखों से आँसू बह चले। विमाता पास ही बैठी थीं। उन्होंने एक नई बात देखी। उसी घड़ी उनकी आँखों से भी आँसू बह चले। उन्होंने प्यार करके लड़के के आँसू पोंछते हुए कहा—"सुरेन्द्र, बेटा, क्या है?" सुरेन्द्र चुप

रहा। इसके बाद उसने एक पोस्टकार्ड माँगा। उसमें उसने टेढ़े-मेढ़े अक्षरों से लिखा—बड़ी दीदी, मुझे ज्वर चढ़ा है, बड़ा कष्ट मिल रहा है।

मगर वह पत्र डाकखाने तक नहीं पहुँचा। पहले पलँग से फ़र्श पर गिरा। वहाँ से झाड़ू देते समय नौकर ने बेदाने के छिलकों, बिस्कुट के टुकड़ों, अंगूर की पिटारी की रुई और इसी तरह के और-और कूड़े-करकट के साथ उस पत्र को भी समेटकर बाहर फेंक दिया। इस तरह सुरेन्द्र के हृदय की आकाङ्क्षा धूल में मिलकर, हवा में उड़कर, ओस में भीगकर, धूप में सूखकर अन्त को एक बबूल के पेड़ के नीचे जाकर पड़ी रही।

पहले तो सुरेन्द्र इस आशा में पड़ा रहा कि पत्र के उत्तर में सदेह बड़ी दीदी के दर्शन मिलेंगे। इसके बाद दीदी के हाथ के लिखे एक काग़ज़ के टुकड़े के लिए ही छटपटाता रहा। किन्तु कई दिन बीत गये, कुछ भी न आया, कोई भी आशा और आकाङ्क्षा पूरी नहीं हुई। धीरे-धीरे बुख़ार उतर गया। पथ्य पाकर वह उठ खड़ा हुआ। इसके बाद सुरेन्द्र के जीवन में एक नई घटना हुई। घटना यद्यपि नई थी, मगर थी बिलकुल ही स्वाभाविक। सुरेन्द्र के पिता को इसकी ख़बर बहुत दिनों से थी, और वे इसके होने की आशा किये बैठे थे। सुरेन्द्र के नाना पबना ज़िले के एक औसत दर्जे के ज़मींदार थे। उनकी ज़मींदारी २०-२५ गाँवों की थी। सालाना

आमदनी ४०-५० हज़ार रुपये की होगी। एक तो उनके कोई लड़का न था, इसलिए खर्च का कम होना स्वाभाविक ही था। उस पर तुर्रा यह कि वे प्रसिद्ध सूम भी थे। इसी कारण अपनी लम्बी ज़िन्दगी में उन्होंने खासी रक़म जमा कर ली थी। उनके मरने पर उनका सारा धन और जायदाद उनके नाती सुरेन्द्र नाथ ही को मिलनेवाली थी, वही उनका एकमात्र उत्तराधिकारी था। सुरेन्द्र के पिता को यह पक्का विश्वास था। हुआ भी वही। सुरेन्द्र के पिता राय महाशय को ख़बर मिली कि उनके ससुरजी मौत के मेहमान होने के लिए तैयार होकर रोगशय्या पर पड़े हुए हैं। इससे उन्होंने चटपट पुत्र-सहित पबने की यात्रा कर दी। किन्तु उनके पहुँचने में देर हो गई, पहले ही ससुर का प्राणान्त हो चुका था।

धूमधाम के साथ ससुर की तेरहीं की गई। ज़मींदारी का इन्तिजाम पहले ही से चौकस था, दामाद ने अपने हाथ में आते ही और भी बाक़ायदे देखना-भालना और जाँचना-समझना शुरू कर दिया। पक्की अक़्लवाले, अनुभवी, और प्रौढ़ वकील रायबाबू के कड़े क़ानूनी बन्दोबस्त से पस्त होकर इलाक़े की सारी प्रजा त्रस्त हो उठी!

अब सुरेन्द्र का ब्याह हो जाना ज़रूरी जान पड़ा। लड़की-लड़कों का पता लगानेवाले घटक (बङ्गाल में यह पेशा करने वाले दलाल घटक कहलाते हैं। युक्तप्रदेश मध्यप्रदेश आदि

में यही काम नाई या पुरोहित वग़ैरह किया करते हैं।) ख़बर पाकर राय महाशय के घर पर आने-जाने और दौड़-धूप करने लगे। गाँव भर में धूम-धाम मच गई। चालीस-पचास कोस तक के घेरे में जहाँ कहीं कोई सुन्दर लड़की थी वहाँ उस लड़की के लिए सुन्दर, सुशील, सम्पन्न और सुशिक्षित वर सुरेन्द्रनाथ राय के सम्बन्ध की सम्भावना के सौभाग्य की सूचना के साथ पहुँचकर घटकों के दल के दल माँ-बापों के घरों को जल्दी-जल्दी अपनी चरण-रज से बारम्बार पवित्र करने लगे। इसी तरह दो महीने, चार महीने, छः महीने बीत गये।

अन्त को एक दिन सुरेन्द्र की विमाता वहाँ आईं। उनके सब सगे-सम्बन्धी जितने जहाँ थे, धीरे-धीरे आकर जमा होने लगे। बन्धु-बान्धवों और नाते-रिश्तेदारों से घर भर गया।

इसके बाद एक दिन सबेरे के समय रोशनचौकी और ढोल-ताशे वग़ैरह बाजों की आवाज़ और बरातियों तथा तमाशाइयों के शोर-गुल से सारा गाँव गूँज उठा। सुरेन्द्रनाथ ब्याह करके घर लौट आया।

७

तब से पाँच वर्ष के लगभग बीत गये। अब न सुरेन्द्र के पिता राय बाबू ही इस लोक में हैं, और न माधवी के पिता ब्रजराज लाहिड़ी ही जीवित हैं। सुरेन्द्र की सौतेली माँ

स्वर्गीय स्वामी की सारी सम्पत्ति और रुपये-पैसे ले जाकर अपने मैके में रहती हैं।

आजकल सुरेन्द्रनाथ की जैसे बड़ाई होती है वैसे ही निन्दा भी। एक दल के लोग कहते हैं कि ऐसा बन्धु-वत्सल, उदार, सरल, निष्कपट, मित्रों की ख़ातिर करनेवाला ज़मींदार दुनिया में दूसरा नहीं दिखाई देता। इसके ख़िलाफ़ दूसरे दल के लोग कहते हैं कि ऐसा सतानेवाला, ज़ालिम ज़मींदार इस देश में दूसरा नहीं पैदा हुआ।

हम जानते हैं, ये दोनों कथन सच हैं। पहली बात तो स्वयं सुरेन्द्रनाथ के कारण सत्य है, और दूसरी बात उनके मैनेजर मथुरानाथ के कारण ठीक है।

सुरेन्द्र की बैठक में आजकल यारों का जमघट रहता है। वे लोग बड़े सुख के साथ संसार के सभी शौक पूरे किये लेते हैं। पान-तमाखू, मदिरा-मांस और अन्य सब इसके साथ की सामग्री भी सदा सभी के लिए सहज-सुलभ रहती है। यारों को किसी चीज़ के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती। कुछ मुँह से माँगना नहीं पड़ता—आप ही आप सब कुछ हाज़िर हो जाता है।

मैनेजर मथुरा बाबू इसमें ख़ूब उत्साह दिखाते हैं। ख़र्च देने में वे कभी ढील नहीं करते। दावतों और जल्सों के ख़र्च के लिए वे दिल-दरिया हैं। उनका ऐसा दबदबा है कि रिआया ख़ुद ख़ुशी से इस मद का सारा ख़र्च चलाती है।

मथुरा बाबू के हिसाब का एक पैसा भी किसी के ऊपर बाकी-बकाया नहीं रह सकता। रैयत के घर में आग लगवाने में, लोगों के बसे-बसाये घर उजड़वाने में, ज़मींदार के दफ़्र में एक छोटी-सी "काल-कोठरी" में कर्ज़दार किसान को कैद करने और मारते-मारते अधमरा कर डालने में वे जो साहस और उत्साह दिखाया करते हैं, उसकी मिसाल मिलना मोहाल है।

असामियों का करुण-क्रन्दन कभी-कभी शान्तिदेवी (सुरेन्द्र-नाथ की स्त्री) के कानों तक पहुँच जाता है। वे स्वामी से उलाहने के तौर पर कहती हैं—तुम अपनी ज़मींदारी की देख-भाल अगर आप न करोगे तो सब तहस-नहस हो जायगा।

सुनकर सुरेन्द्र जैसे चौंक उठता है। कहता है—नहीं तो, ऐसी बात है! यह क्या तुम सच कहती हो?

"सच नहीं है! गाँव भर में, सारे इलाक़े में, निन्दा हो रही है! कान नहीं दिये जाते! केवल तुम्हारे ही कानों तक ये बातें नहीं पहुँच पातीं! चौबीसों घण्टे यार-दोस्तों को लिये बैठे रहने से कहीं कोई ऐसी बातें सुन पाता है? ऐसे मैनेजर का कोई काम नहीं; उसे अभी जवाब दे दो।"

सुरेन्द्र दुःखित और अप्रतिभ होकर कहता है—"ठीक है, मैं कल से आप ही सब कुछ देखूँ-सुनूँगा।" इसके बाद कुछ दिन तक ज़मींदारी का काम-काज देखने की धूम मच जाती है। मैनेजर बाबू घबरा उठते हैं, कभी-कभी गम्भीर

आव से कहने लगते हैं—बाबूजी, इस तरह इन्तिज़ाम में नरमी करने से भला ज़मींदारी कैसे रहेगी ? क्या आप समझते हैं कि सख़्ती से काम लिये बिना आप अपनी ज़मींदारी बनाये रख सकेंगे ? कभी नहीं।

सुरेन्द्र सूखी हँसी हँसकर कहता है—दरिद्र, दीन, दुखियों का ख़ून चूसकर जो ज़मींदारी चलती है उस ज़मींदारी को बनाये रखकर क्या होगा ? ऐसी हत्यारी ज़मींदारी किस काम की मथुरा बाबू ? "तो फिर मुझे छुट्टी दीजिए, मैं चला जाऊँ।—"

यह सुनते ही सुरेन्द्र तुरन्त नरम पड़ जाता है। इसके उपरान्त फिर सब जैसे का तैसा हो जाता है। वही पहले की तरह सब काम होने लगता है। सुरेन्द्र अपने बैठकख़ाने में उसी तरह यारों की ऐयारी में फँस जाता है। फिर वह बैठक से बाहर नहीं निकलता।

अभी हाल में एक और नई बला आकर उसके गले पड़ गई है। अभी जो नया बाग़ मय बारहदरी के बनकर तैयार हुआ है उसमें एक एलोकेशी नाम की औरत ने कलकत्ते से आकर अड्डा जमाया है। वह नाचने-गाने में कमाल करती है। देखने में भी बुरी नहीं है। छत्ता टूटने पर ममाखियों के झुण्ड जैसे दल के दल एक जगह से दूसरी जगह के लिए दौड़ पड़ते हैं वैसे ही यारों का जत्था अब बैठकख़ाने की बैठक छोड़कर उसी ओर दौड़कर जाने लगा

है। यारों को तो इतना आनन्द और उत्साह है कि वे उसे सँभाल नहीं पाते। सुरेन्द्र को भी वे सब उधर ही खींचकर ले गये हैं। आज तीन दिन हुए, शान्ति को स्वामी के दर्शन नहीं मिले। चौथे दिन स्वामी को आते देखकर वह पीठ के बल दरवाज़े के सहारे खड़ी होकर पूछने लगी—"इतने दिन कहाँ रहे?" "बाग़ की बारहदरी में।" "वहाँ ऐसा कौन है, जो तुम तीन दिन तक पड़े रहे?" "हाँ—सो तो—"

"हर बात में बस वही 'सो तो' कह देते हो! मैं सब सुन चुकी हूँ।"—कहते-कहते शान्ति रो पड़ी। बोली—"मुझसे क्या ऐसा अपराध बन पड़ा है, जो इस तरह पैरों से ठेल रहे हो!" "कहाँ, ऐसा तो मैंने—"

"और किसे पैरों से ठेलना कहते हैं? हम स्त्रियों का अपमान इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?" "हाँ हाँ—सो तो ठीक ही है—मगर वही सब लोग—"

शान्ति ने जैसे यह कुछ सुना ही नहीं। वह और भी अधिक रोने लगी; बोली—तुम स्वामी हो, मेरे देवता हो! मेरा यह लोक और परलोक, सब कुछ तुम्हीं हो! मैं क्या तुमको पहचानती नहीं। मैं जानती हूँ, मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ, मैंने एक दिन के लिए भी तुम्हारा मन नहीं अपनाया। यह अपनी यातना तुमसे किस तरह कहकर समझाऊँ! तुम लज्जित न होओ, तुम्हें क्लेश न हो, यह सोचकर कोई अपने हृदय की बात—अन्तःकरण की गूढ़ व्यथा—तुम्हारे आगे कभी नहीं कहती।

"रोती क्यों हो शान्ति?"

"रोती क्यों हूँ, क्या बताऊँ? क्यों रोती हूँ, इसे अन्तर्यामी जानते हैं। मैं यह भी समझती हूँ, यह मुझसे छिपा नहीं है कि तुम मेरा अनादर नहीं करते। तुम्हारे मन में भी क्लेश है, तुम क्या करो? (आँसू पोंछकर) मैं भले ही ज़िन्दगी भर ऐसी ही दुस्सह यातना पाऊँ, कोई हर्ज नहीं। लेकिन तुमको क्या कष्ट है, यह अगर मुझे मालूम हो सके—"

सुरेन्द्र ने उसे अपने पास खींचकर, अपने हाथों से उसके आँसू पोंछकर, स्नेह-पूर्ण स्वर में कहा—तो फिर तुम क्या करो शान्ति?

इस प्रश्न का भला क्या उत्तर दिया जा सकता है? इसका तो कुछ उत्तर ही नहीं। शान्ति फिर फूल-फूलकर रोने लगी।

बहुत देर के बाद शान्ति ने कहा—तुम्हारा शरीर भी तो आजकल अच्छा नहीं देख पड़ता।

"आज क्यों, पाँच वर्ष से अच्छा नहीं है। जिस दिन कलकत्ते में क़िले के मैदान में गाड़ी के नीचे मैं कुचल गया था, छाती में, पीठ और पसलियों में गहरी चोट खाकर महीने भर के लगभग अस्पताल में पड़ा रहा था, उसी दिन से मेरा शरीर तन्दुरुस्त नहीं है। उस दिन की चोट, वह व्यथा किसी तरह नहीं दूर हुई। कभी-कभी ख़ुद मुझे यह सोचकर आश्चर्य होने लगता है कि मैं अब तक ज़िन्दा कैसे हूँ!"

शान्ति ने चटपट स्वामी की छाती में हाथ लगाकर कहा—चलो, गाँव छोड़कर हम लोग कलकत्ते चलें। वहाँ अच्छे और बड़े-बड़े डाक्टर रहते हैं—

सुरेन्द्र सहसा प्रसन्न होकर कह उठा—ठीक है, चलो। वहाँ बड़ी दीदी भी हैं।

शान्ति ने कहा—तुम्हारी बड़ी दीदी को देखने की तो मेरी भी बड़ी इच्छा है। उन्हें अपने डेरे पर ले आओगे न ?

"लाऊँगा क्यों नहीं ?"—यह कहकर, उसके बाद ज़रा सोचकर सुरेन्द्र ने कहा—वे अवश्य आवेंगी; मैं मर रहा हूँ, यह सुन पावें—

शान्ति ने बीच ही में हथेली से स्वामी का मुँह बन्द कर दिया। बोली—"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, फिर ऐसी बात मुँह से न निकालना।" "अहा! वे अगर आ जायँ तो फिर मुझे कोई दुःख ही न रह जाय।"

एक प्रकार के मान-अभिमान से शान्ति का हृदय भर गया। अभी-अभी दम भर पहले उसने कहा था कि वह स्वामी की कोई नहीं है। किन्तु सुरेन्द्र ने इतना नहीं समझा, इस ओर इतना ध्यान नहीं दिया, इस पहलू को उतना ग़ौर करके नहीं देखा। वह जो कुछ कह रहा था, उसी में उसे बड़ा आनन्द होता था। वह उसी सिलसिले में कहता चला गया—"तुम ख़ुद जाकर बड़ी दीदी को बुला लाना शान्ति। क्यों न ?" शान्ति ने सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया।

"उनके आते ही तुम देख लेना, मुझे कोई कष्ट नहीं रह जायगा।" शान्ति की दोनों आँखें फाड़कर जैसे आँसू बह चले।

दूसरे दिन शान्ति ने दासी की ज़बानी मैनेजर बाबू के पास कहला भेजा कि बाग में जिसको लाकर रक्खा गया है उसे अभी, इसी दम, अगर भगा न दिया गया तो उनको मैनेजरी से हाथ धोकर अपने घर की राह देखने की तैयारी कर लेनी चाहिए। इधर स्वामी से उसने कहा—ख़ैर, और चाहे जो हो, लेकिन अगर तुमने घर के बाहर पैर निकाला तो मैं सिर पटक-पटक कर जान देदूँगी!

सिटपिटाया हुआ सुरेन्द्र कहने लगा—वही तो—हाँ—सो, मगर वे लोग सब—

"अच्छा, तो 'मगर' का भी बन्दोबस्त किये देती हूँ।" कहकर शान्ति ने दासी को बुलाकर फिर हुक्म दिया—जाकर दरवाज़े पर सिपाही से कह दे कि ये सब बदमाश गुण्डे अब मेरी चौखट न नाँघने पावें।

मैनेजर बाबू ने देख लिया कि अब मामला बेढब है। इससे फ़ौरन् एलोकेशी को बिदा कर दिया। यारों की पार्टी भी तितर-बितर हो गई। इसके बाद मैनेजर बाबू नये सिरे से चित्त लगाकर ज़मींदारी का काम देखने-भालने लगे।

सुरेन्द्रनाथ का भी कलकत्ते जाना फ़िलहाल रुक गया। कलेजे का दर्द इधर कुछ घटने लगा था। कलकत्ते जाने के

लिए शान्ति भी अब वैसा अधिक उत्साह नहीं दिखलाती। वह यहीं रहकर यथा सम्भव स्वामी की सेवा का आयोजन करने लगी। एक नामी तजुर्बेकार डाक्टर को कलकत्ते से बुलाकर उसने स्वामी को दिखलाया। विज्ञ चिकित्सक ने सब देख-सुनकर एक दवा तजवीज की। साथ ही विशेष रूप से सावधान रहने का उपदेश देते हुए कहा कि रोगी के कलेजे की हालत बड़ी नाज़ुक है; ऐसी हालत में शरीर का या मन का कोई भी परिश्रम करना ठीक नहीं।

इधर मौक़ा देखकर मैनेजर ने जिस ढंग से ज़मींदारी का काम देखना-भालना शुरू कर दिया था उसका परिणाम यह हुआ कि इलाक़े भर में हर ओर हाहाकार मच गया। बीच-बीच में प्रजा का आर्तनाद शान्ति को सुन पड़ता था। लेकिन डाक्टर की नसीहत का ख़याल करके वह स्वामी से कुछ कहने का साहस न करती थी।

८

कलकत्ते में, ब्रजबाबू के परिवार में, अब ब्रजबाबू के स्थान पर पुत्र शिवचन्द्र मालिक है। घर के भीतर का प्रभुत्व माधवी के हाथ से निकलकर नई बहू (अर्थात् उसकी भाभी) के हाथ में चला गया है। भाई (शिवचन्द्र) आज भी उसी तरह ख़ूब स्नेह-आदर का व्यवहार करता है; किन्तु फिर भी, न जानें क्यों, अब माधवी का मन यहाँ नहीं लगता—यहाँ

रहने को जी नहीं चाहता। घर के दास-दासी, मुनीम-गुमाश्ते वगैरह सब इस समय भी वही बड़ी दीदी कहते हैं, लेकिन यह सभी समझते हैं कि सन्दूक़ की कुञ्जी अब दूसरे ही के आँचल में बँधी रहती है। किन्तु इसका यह मतलब न निकालना चाहिए कि शिवचन्द्र की स्त्री माधवी से अवज्ञा अथवा अनादर का व्यवहार करती है। हाँ, वह इस तरह का एक भाव अवश्य दिखाया करती है, जिससे माधवी अच्छी तरह समझती रहती है कि अब इस नई आई हुई छोकरी की अनुमति और सलाह लिये बिना, पहले की तरह, अपनी इच्छा के अनुसार कोई काम कर डालना मुझे शोभा नहीं देता।

तब बाप का ज़माना था, अब भाई की अमलदारी है। तब और अब में थोड़ा-सा अन्तर होना ही चाहिए। पहले उसका आदर था, उसकी ज़िद का ज़माना था, लेकिन अब आदिर होने पर भी ज़िद नहीं चलने पावेगी। बाप के प्यार-दुलार से वह उन दिनों स्याह-सफ़ेद करने की मालकिन थी, किन्तु अब जैसे और सब आत्मीय कुटुम्बी जन हैं वैसे ही उन्हीं के दल में उसका भी शुमार है।

यहाँ पर अगर कोई ग्रन्थकार के बारे में यह कहने लगे कि वह शिवचन्द्र या उनकी स्त्री को दोष लगाता है, सीधे-सीधे न कहकर घुमा-फिराकर निन्दा कर रहा है, तो वह ग्रन्थकार के विषय में भूल करेगा। संसार का जो नियम

है, जो रीति-नीति आदि से लेकर आज तक चली आ रही है, उसी का उल्लेखमात्र यहाँ ग्रन्थकार कर रहा है। माधवी के कर्म फूट गये हैं; 'अपना' कहकर जिस पर दावा कर सके, ऐसा कोई स्थान उसके लिए नहीं है। मगर इससे औरों को क्या? वे अपनी चीज़ पर दावा करना क्यों छोड़ें? वे अपना छोटे-से-छोटा, साधारण-से-साधारण अधिकार भी क्यों छोड़ने लगे? स्वामी की चीज़ पर स्त्री का अधिकार होता है, यह कौन नहीं जानता? क्या केवल शिवचन्द्र की स्त्री ही यह बात नहीं जानती? शिवचन्द्र तो ख़ैर, माधवी का भाई है, लेकिन उसकी स्त्री माधवी की कौन है? वह ग़ैर के लिए अपना अधिकार क्यों छोड़ दे? माधवी यह सब समझ सकती और समझती भी है। भावज जब बिलकुल छोटी थी, और ब्रजबाबू ज़िन्दा थे, तब माधवी की दृष्टि में छोटी बहन प्रमीला और भावज, दोनों समान थीं; लेकिन अब बात-बात में भावज की राय नहीं मिलती—माधवी दिन कहती है तो वह रात बताती है। माधवी बचपन से तुनुकमिज़ाज है। ज़रा-सी बात उसे लग जाती है। इसी से वह अब अपने को सबसे नीचे के स्थान में रखना चाहती है। किसी की बात बरदाश्त करने की ताब उसमें नहीं, इसी लिए वह कुछ बोलती ही नहीं। जहाँ उसका कुछ ज़ोर नहीं है, वहाँ सिर ऊँचा करके खड़े होने में शर्म के मारे जैसे उसका सिर झुक जाता है। मन को कुछ दुःख पहुँचने पर वह चुपचाप

उसे सह लेती है—शिवचन्द्र तक से कुछ नहीं कहती-सुनती। स्नेह की दोहाई देने का उसे अभ्यास ही नहीं। इसी कारण आत्मीयता अथवा सगेपन के सहारे अपना अधिकार जताना उसे नहीं रुचता। ऐसे अधिकार का विचार भी मन में आने से उसके सारे शरीर और मन से धिक्कार की ध्वनि उठने लगती है। साधारण स्त्रियों की तरह लड़ने-झगड़ने के ऊपर उसे कितनी घोर घृणा है, यह केवल वही जानती है।

एक दिन माधवी ने शिवचन्द्र को बुलाकर कहा—"दादा, मैं ज़रा ससुराल जाऊँगी।" शिवचन्द्र ने विस्मय के साथ कहा—"यह क्यों बहन? वहाँ तो तुम्हारा अपना कोई नहीं है।" माधवी ने परलोकगत पूज्य पति की ओर इशारा करते हुए कहा—छोटा भानजा काशी में ननदजी के पास रहता है। उसे साथ लेकर मैं गोलागाँव में अच्छी तरह रह सकूँगी।

पबना-ज़िले के गोलागाँव मौज़े में माधवी की ससुराल थी। शिवचन्द्र ने हलकी हँसी हँसकर कहा—"यह नहीं हो सकता। वहाँ तुम्हें बड़ा कष्ट होगा।" "कष्ट क्यों होगा? वहाँ का घर तो अभी वैसा ही खड़ा है। दस-पाँच बीघे ज़मीन भी अपनी है। एक विधवा का गुज़र क्या इतने में नहीं हो सकता?" गुज़र हो सकने की बात मैं नहीं कहता। रुपये-पैसे के लिए तो कुछ चिन्ता नहीं। मैं यह कहता हूँ कि वहाँ पर उजाड़ में अकेले रहने में बड़ा कष्ट

पाओगी।" "कुछ भी कष्ट न होगा।" शिवचन्द्र ने दम भर सोचकर कहा—"मगर तुम यहाँ से क्यों जाना चाहती हो? मुझे सब ख़ुलासा करके बतलाओ। मैं सब झगड़ा अभी मिटाये देता हूँ।" इसके पहले, जान पड़ता है, शिवचन्द्र ने अपनी स्त्री के मुँह से बहन के ख़िलाफ़ कुछ सुना होगा, और उसी का ख़याल हो आने से उसने यह बात कही होगी। लज्जा के मारे माधवी का चेहरा लाल हो उठा। उसने कहा—"दादा, तुम क्या यह समझते हो कि मैं लड़-झगड़कर तुम्हारे घर से कहीं जाऊँगी?" शिवचन्द्र ख़ुद भी शर्मिन्दा हुआ। चटपट बात टालने के लिए कहने लगा—"नहीं, नहीं, यह मैं नहीं कहता। मेरा ऐसा ख़याल कभी नहीं हो सकता बहन। मेरे कहने का प्रयोजन इतना ही है कि यह घर तो हमेशा ही तुम्हारा है। फिर क्यों तुम जाना चाहती हो?" एक साथ दोनों ही को अपने स्नेहमय पिता का स्मरण हो आया। दोनों ही की आँखों में आँसू भर आये। आँसू पोंछकर माधवी ने कहा—मैं क्या सदा के लिए जाती हूँ। फिर आ जाऊँगी। तुम्हारे लड़के का जनेऊ जब होगा तब मुझे ले आना। इस समय मुझे जाने दो।

"यह अवसर तो कहीं आठ-दस वर्ष में जाकर आवेगा।"

"अगर जीती रहूँगी तो अवश्य आऊँगी।"

माधवी किसी तरह बाप के घर में रहने को राज़ी नहीं हुई, और जाने की तैयारी करने लगी। उसने नई आई हुई

बहू को सारी घर-गिरिस्ती सौंप दी—सब कुछ समझा-बुझा दिया। दास-दासियों को पास बुलाकर उन्हें आशीर्वाद दिया। जिस दिन जाने का मुहूर्त था उस दिन आँखों में आँसू भरे हुए शिवचन्द्र बहन के आगे खड़े होकर कहने लगा—माधवी, तेरे दादा ने तो तुझे कभी कुछ नहीं कहा-सुना ?

माधवी ने हँसकर कहा—ये कैसी बातें कर रहे हो दादा ?

"यह नहीं, मैं कहता हूँ, अगर किसी बुरी घड़ी में किसी दिन मेरे मुँह से अचानक असावधानी में कुछ—"

"नहीं दादा, तुमने कभी कुछ नहीं कहा।"

"सच ?"

"सच।"

"अच्छा तो जाओ। तुम्हें अपने घर जाने के लिए अब मैं मना नहीं करूँगा। जहाँ तुम्हें अच्छा लगे वहीं रहो। मगर हाँ, हमेशा अपनी खैर-खबर देना न भूलना।"

माधवी पहले काशी गई। वहाँ जाकर भानजे को साथ लिया। वहाँ से उसका हाथ पकड़े गोलागाँव में आई। आज सात वर्ष के बाद उसने फिर दुबारा ससुराल की चौकठ में पैर रक्खा।

तब तो गोलागाँव के चटर्जी महाराज पर जैसे बड़ी भारी विपत्ति का पहाड़ ही फट पड़ा। उनसे और योगेन्द्र (माधवी

का पति) के पिता से बड़ी गहरी मित्रता थी। इसी से मरते समय योगेन्द्र अपनी कई बीघे ज़मीन उन्हीं को सौंप गया था। योगेन्द्र की ज़िन्दगी में भी वही इस ज़मीन का इन्तिज़ाम और देख-भाल किया करते थे। योगेन्द्र उसकी ओर से बिलकुल बेख़बर रहता था। उसके ससुर (माधवी के बाप) के पास काफ़ी धन था। इसलिए योगेन्द्र को अपने बाप की दी हुई इस मामूली जायदाद की कुछ ज़्यादह पर्वा नहीं थी। इसके बाद, योगेन्द्र के मर जाने पर, चटर्जी महाराज पूर्ण रूप से न्यायानुमोदित अधिकार पाकर निष्कण्टक होकर बिना विघ्न-बाधा के उस सारी ज़मीन का मुनाफ़ा अपने मसरफ़ में लाने लगे। लेकिन अब इतने दिनों के बाद योगेन्द्र की विधवा माधवी ने आकर नियम और सुश्रृङ्खला के साथ बँधी हुई उनकी सुख की गृहस्थी में—मुफ़्त मिल गई जीविका में—गड़बड़ मचाने की सूचना दी। कहने की ज़रूरत नहीं, सुचतुर चटर्जी महाराज को यह माधवी का अत्यन्त अविचार और अत्याचार जान पड़ा। उन्हें स्पष्ट समझ पड़ा कि माधवी ने जलापे के मारे जान-बूझकर यह उत्पात मचाया है। उन्होंने बहुत ही खीझकर माधवी के पास आकर कहा—"सुनती हो बहू, तुम्हारी जो दो बीघे वह ज़मीन पड़ी है उस पर दस साल की लगान की रक़म चढ़ गई है। मय सूद के कुल सौ रुपये हो गये हैं। ये रुपये न दिये जायँगे तो ज़मीन नीलाम हो जायगी। समझ गईं?" माधवी ने अपने भानजे

सन्तोषकुमार से कहलाया—"रुपयों के लिए कुछ चिन्ता नहीं है।" इसके उपरान्त उसने लड़के के हाथ सौ रुपये उसी दम चटर्जी के पास भेज दिये। पाठकों को बतला देने में कोई हर्ज नहीं, ये रुपये चटर्जी ने अपने ही काम में ख़र्च किये।

किन्तु माधवी इस तरह सहज में छोड़नेवाली औरत नहीं थी। उसने सन्तोष को भेजकर पूछा—सिर्फ़ इस दो बीघे ज़मीन से ही तो मेरे स्वर्गवासी ससुर का निर्वाह नहीं होता था। अतएव बाक़ी जो सब जगह-ज़मीन है, वह कहाँ और किसके पास है?

सुनते ही चटर्जी आगबबूला हो गये। वे ख़ुद आकर बोले—वह तो सारी ज़मीन बिक गई। कुछ थोड़ी-सी साझे में जोती-बोई जाती भी है। आठ-दस साल से ज़मींदार का पोत न दिया जायगा तो ज़मीन कैसे बनी रहेगी?

माधवी ने पूछा—क्या ज़मीन से कुछ भी आमदनी नहीं होती थी, जो पोत के रुपये भी नहीं दिये गये? और, अगर सचमुच ज़मीन बिक ही गई तो उसे किसने बेचा और किसने ख़रीदा है, यह मालूम हो, तो उसको फिर फेर लेने के लिए कोशिश की जाय। ज़मीन की बिक्री और ख़रीद के सम्बन्ध के सारे काग़ज़ात कहाँ हैं?

चटर्जी महाशय ने इन प्रश्नों के उत्तर में कुछ कहा अवश्य था, लेकिन माधवी कुछ नहीं समझ सकी। चटर्जी बुद-बुदाते हुए अस्पष्ट गोलमाल भाषा में न जाने क्या-क्या बक गये।

इसके बाद वह सिर पर छाता लगाकर, रामनामी चादरा कमर में लपेटकर, एक कोरी धोती अँगोछे में बाँधकर लालता गाँव की ओर, ज़मींदार के दफ़्तर को जाने के लिए, उसी दिन चल दिये। इसी लालता गाँव में हमारे सुरेन्द्र बाबू का घर और उनके मैनेजर मथुरा बाबू का दफ़्तर है। चटर्जी आठ-दस कोस राह बराबर पैदल चलकर एकदम मथुरा बाबू की शरण में उपस्थित हुए, और रोकर कहने लगे—दोहाई है भैया साहब! जान पड़ता है, अब मुझ ग़रीब ब्राह्मण को राह-राह भीख माँगकर पेट और परिवार पालना पड़ेगा!

इस तरह बहुत लोग आया ही करते हैं। मथुरा बाबू ने ब्राह्मण की ओर मुँह फेरकर कहा—"हुआ क्या? कुछ हाल तो कहो!" "भैया, ब्राह्मण की रक्षा करो।" "अरे कुछ कहोगे भी, हुआ क्या?"

तब विधुशेखर चटर्जी ने वही माधवी के दिये हुए सौ रुपये कमर से निकालकर मैनेजर साहब के हाथ में रख दिये। इस तरह दक्षिणा देने के बाद बोले—आप धर्मावतार ठहरे। आप रक्षा न करेंगे तो मेरा सर्वस्व हाथ से चला जायगा।

"सब मामला ख़ुलासा करके समझाओ तो सही।"

"बात यह है कि गोलागाँव के रहनेवाले रामतनु सान्याल के पुत्र की विधवा स्त्री इतने दिनों के बाद लौट आई है, और सारी ज़मीन पर अपना दख़ल जमाना चाहती है।"

मथुरा बाबू ने हँसकर कहा—वह तुम्हारी सारी ज़मीन-जायदाद पर दख़ल जमाना चाहती है, या तुम उसके सर्वस्व पर हाथ सफ़ा करना चाहते हो? यथार्थ बात क्या है?

तब ब्राह्मण ने अपने दोनों हाथों में जनेऊ लपेटकर मैनेजर का हाथ पकड़कर कहा—मैं आज दस बरस से उस ज़मीन का लगान देता आ रहा हूँ भैया!

"ज़मीन से फ़ायदा उठाते हो, लगान न दोगे?"

"दोहाई है आपकी—"

मैनेजर साहब सब समझ गये। बोले—विधवा को चकमा देकर उसकी ज़मीन हथियाना चाहते हो न?

चटर्जी चुपचाप उनकी ओर ताकते रहे।

"कै बीघे ज़मीन है?"

"पचीस बीघे।"

मथुरा बाबू ने ज़बानी हिसाब लगाकर कहा—कम से कम तीन हज़ार रुपये की जायदाद है। अच्छा, ज़मींदार को कितनी रक़म नज़राने में दोगे?

"आपका जो हुक्म होगा, वही दूँगा। तीन सौ रुपये दूँगा।"

"तीन सौ देकर तीन हज़ार हज़म करना चाहते हो! जाओ, यह काम मेरे ज़रिये नहीं हो सकता।"

ब्राह्मण ने सूखी आँखों में आँसू भरकर कहा—आप कितने रुपयों के लिए हुक्म देते हैं?

"हज़ार रुपये दे सकोगे?"

इसके उपरान्त दोनों बहुत देर तक एकान्त में बातचीत और सलाह करते रहे। नतीजा यह ठहरा कि योगेन्द्रनाथ की विधवा माधवी के ऊपर ज़मींदार की ओर से बाक़ी दस वर्ष का लगान और उसका सूद मिलाकर कुल डेढ़ हज़ार रुपये की नालिश हो गई। समन जारी हुआ, लेकिन माधवी के पास तक नहीं पहुँचा। उसके बाद एकतरफ़ा डिक्री हो गई, और डेढ़ महीने के बाद माधवी ने सुना कि बाक़ी लगान की वसूली के लिए ज़मींदार की ओर से उसकी ज़मीन और घर-बार तक नीलाम पर चढ़ाने का इश्तिहार जारी किया गया है—उसकी सारी जायदाद कुर्क़ हो गई।

सुनकर माधवी ने एक परोसिन को बुलाकर उससे कहा—बहन, तुम्हारा देश क्या अन्धेर-नगरी है?

"ऐसा तो नहीं है। क्यों, क्या हुआ जी?"

"मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है। एक शैतान जालिया धोखा देकर जाल करके मेरा सर्वस्व हड़प लेना चाहता है, और तुम लोग कुछ नहीं देखते-सुनते। यह कैसा अन्धेर है?"

परोसिन ने कहा—मगर मैं क्या कर सकती हूँ? हम लोगों का क्या बस है? ज़मींदार अगर तुम्हारी ज़मीन-जायदाद नीलाम करा ले तो कोई क्या कर सकता है? हम ग़रीब-दुखिया लोग क्या कर सकते हैं?

"ख़ैर, यह भी मैंने मान लिया। मैं यह पूछती हूँ, मेरा घर नीलाम पर चढ़ गया, और मुझे उसकी

ख़बर तक नहीं दी गई, यह क्या बात है? तुम्हारा ज़मींदार कैसा है?"

तब परोसिन ने सारी बातें विस्तार के साथ कहना शुरू किया। ऐसा अत्याचारी, प्रजा-पीड़क ज़मींदार और ऐसा अन्धेर, ऐसा अत्याचार-अविचार इस देश में कभी किसी ने नहीं देखा-सुना। उस परोसिन ने और भी न-जाने क्या-क्या कहा-सुना। आज तक लोगों के मुँह से ज़मींदार के बारे में जो कुछ उसने सुना था, जो कुछ वह जानती थी, सो सब एक-एक करके कह सुनाया। माधवी ने डरते-डरते पूछा—"अच्छा, अगर ज़मींदार बाबू से भेंट करके मैं ख़ुद कहूँ-सुनू, तो क्या कुछ उपाय हो सकेगा? इस बारे में तुम्हारी क्या राय है?" अपने लिए नहीं, भानजे के लिए माधवी सब कुछ करने को तैयार थी। परोसिन इस बारे में उसी समय कुछ सलाह न दे सकी; किन्तु जाते समय यह वादा कर गई कि कल वह अपनी बहन के लड़के से अच्छी तरह पूछ-ताछ करके आवेगी, और बतलावेगी। उसकी बहन का लड़का दो-तीन बार लालतागाँव हो आया था। ज़मींदार के यहाँ की बहुत-सी बातें वह जानता था; यहाँ तक कि उस दिन बाग़ में एलोकेशी के आने, रहने और भगाये जाने की ख़बर तक सुन आया था। मौसी ने जब उससे यह पूछा कि रामतनु बाबू की विधवा पतोहू ज़मींदार बाबू से भेंट करना चाहती है, सो इस बारे में तेरी क्या राय है, तो उसने यथासम्भव

मुँह बनाकर गम्भीर भाव धारण करके पूछा—उस विधवा की अवस्था क्या है ?

"बीस-इक्कीस वर्ष की होगी।"

उसने सिर हिलाते हुए कहा—देखने-सुनने में कैसी है ?

"बिलकुल परी जान पड़ती है।"

इस पर उसने विचित्र ढङ्ग से मुँह बनाकर कहा—हाँ, तो भेंट करने से उसका काम हो जाने की बहुत कुछ आशा की जा सकती है। लेकिन सच पूछो तो मेरी राय यही है कि वे आज ही रात को चुपचाप नाव पर चढ़कर अपने बाप के घर खिसक जायँ। इसी में कुशल है।

"क्यों ?"

"तुम कहती हो न कि वे देखने में परी-जैसी ख़ूबसूरत हैं।"

"तो फिर इससे क्या ?"

"इसी से तो पूरा खटका है। परी-जैसी रूपवती युवती ज़मींदार सुरेन्द्र राय की नज़रों में पड़कर फिर अपने धर्म की रक्षा किसी तरह नहीं कर सकती। समझीं ?"

"कहता क्या है ? यह हाल है ?"

उसने हँसकर कहा—हाँ मौसी, यही हाल है। सभी लोग जानते हैं।

"तब तो उसका ज़मींदार से मिलना मुनासिब नहीं।"

"किसी तरह नहीं।"

"लेकिन ऐसे ही बैठे रहने से बेचारी विधवा का सर्वस्व जो चला जायगा ?"

"वह खूसट चटर्जी जब इस मामले में मौजूद है तब ज़मीन-जायदाद बचने की कोई आशा नहीं। गृहस्थ के घर की विधवा धन के साथ धर्म भी क्या गँवा देगी ?"

दूसरे दिन परोसिन ने आकर माधवी से सारा हाल कह दिया। सुनकर माधवी सन्नाटे में आ गई। ज़मींदार सुरेन्द्र राय का नाम और उनके यहाँ सुने हुए काम दिन भर उसे नहीं भूले। माधवी सोचने लगी—सुरेन्द्र राय ? यह सुरेन्द्र राय कौन है ? यह नाम तो बहुत ही परिचित है, लेकिन स्वभाव और चरित्र तो उससे बिलकुल नहीं मिलता। इस नाम को तो वह न जाने कितने दिन से मन ही मन याद करती आ रही है। उसको आज पूरे पाँच वर्ष हुए! कुछ-कुछ भूल चली थी—लेकिन आज बहुत दिनों के बाद प्रसङ्ग-वश फिर याद आ गई!

उस दिन माधवी को अच्छी तरह नींद नहीं आई। स्वप्न भी बुरे ही बुरे देख पड़े। वह रात बड़े कष्ट और दुःख के साथ उसने काटी। बार-बार वे सब पुरानी बातें याद हो आती थीं—बार बार आँखों से आँसू बह चलते थे। बालक सन्तोषकुमार ने उसके मुख की ओर देखकर डरते-डरते कहा—"मामी! मैं मा के पास जाऊँगा।" माधवी खुद भी कई बार यही सोच चुकी थी। क्योंकि यहाँ का अन्न-जल जब उठ

गया तब फिर काशीवास के सिवा और कोई उपाय नहीं। उसने सन्तोषकुमार ही के लिए ज़मींदार से भेंट करने का इरादा अपने मन में किया था; लेकिन अब यह नहीं होने का। पास-परोस के लोग मना कर रहे हैं। इसके अलावा अब वह चाहे जहाँ जाय, एक नई चिन्ता हो गई है, एक नई आफ़त आ पड़ी है। वह और कुछ नहीं, उसी के रूप और जवानी की प्रसिद्धि है। माधवी ने अपने मन में कहा कि मेरे नसीब ही फूटे हैं। रूप आदि का उपद्रव क्या अब तक इस देह में बना ही हुआ है। आज सात साल हुए, इन बातों का उसे ख़याल ही न था। इधर ध्यान दिलानेवाला कोई था ही नहीं। स्वामी के मरने पर जब वह अपने बाप के घर लौट गई थी तब सभी ने उसे "बड़ी दीदी", "बिटिया", "माई" आदि कहना शुरू कर दिया था। इन सम्मान-सूचक सात्विक सम्बोधनों ने उसके मन को और भी अ-समय में ही वृद्ध बना दिया था। रूप-यौवन कुछ चीज़ नहीं है। जहाँ उसे बड़ी दीदी का काम करना होता था, माता का स्नेह और सयत्न सेवा का सदावर्त बाँटना पड़ता था, वहाँ क्या कभी इस रूप और जवानी का ख़याल मन में आ सकता था? पहले ख़याल न था, अब ख़याल हो आया, तो चिन्ता भी उत्पन्न हो गई, खटका भी पैदा हो गया। ख़ास कर इस जवानी के उल्लेख से। लज्जा की मलिन हँसी हँसकर उसने आप ही आप कहा—"यहाँ के आदमी अन्धे हैं या पशु?" किन्तु माधवी ने

भूल की—सभी का मन उसकी तरह २१-२२ वर्ष की उम्र में ही बूढ़ा नहीं हो जाता।

इसके तीन दिन बाद जब ज़मींदार का सिपाही माधवी के दरवाज़े पर आसन जमाकर बैठ गया, और ऊँची आवाज़ में जोर-शोर से ग्रामवासियों को ज़मींदार सुरेन्द्र राय की और एक नई कीर्ति की सूचना देने लगा, तब माधवी, चटपट सन्तोष का हाथ पकड़कर दासी के पीछे-पीछे घर से निकल खड़ी हुई, और जाकर नाव पर सवार हो गई।

घर के पास ही नदी का घाट था। माधवी ने माँझी से कहा—"सोमरापुर जाना है।" माधवी ने सोचा, ज़रा छोटी बहन प्रमीला को देखती जाऊँ।

गोलागाँव से पन्द्रह कोस के फ़ासले पर सोमरापुर में प्रमीला का ब्याह हुआ था। आज एक साल से वह ससुराल में है। प्रमीला शायद फिर कलकत्ते जाय, लेकिन उस समय वहाँ माधवी कहाँ होगी! इसी से उसने उसे एक बार देख लेना उचित समझा।

सबेरे के पहर सूर्योदय के साथ ही माँझियों ने नाव खोल दी। धारा के प्रवाह में नाव बह चली। हवा का रुख़ उलटा था। इसी से नाव धीमी चाल से, बाँसों के जङ्गल के भीतर होकर, कँटीले झाड़-झंखाड़ बचाकर, सेंठों के झुरमुट को ठेलती हुई धीरे-धीरे जा रही थी। बालक सन्तोष के आनन्द की सीमा नहीं थी। वह नाव में छप्पर के भीतर

बैठा हुआ, वहीं से हाथ बढ़ाकर, आसपास के पेड़ों के पत्ते उत्साह के साथ तोड़ने लगा। माँझियों ने कहा—हवा का ज़ोर अगर कम न होगा तो कल दोपहर तक नाव सोमरापुर न पहुँच पावेगी।

आज माधवी को निर्जल एकादशी का व्रत था। किन्तु सन्तोष के लिए तो अवश्य ही कहीं पर नाव लगाकर रसोई बनाना और उसे खिलाना होगा। माँझी ने कहा—दिस्ते-पाड़ा के गंज में नाव लगाने से बहुत सुभीता होगा। वहाँ सब सामान मिलता है।

दासी ने कहा—यही करो भैया, दस-ग्यारह बजे तक लड़के को भोजन मिल जाना चाहिए।

६

कातिक का महीना समाप्त होनेवाला है। कुछ जाड़ा पड़ने लगा है। सुरेन्द्रनाथ के ऊपर के कमरे में खिड़की की राह से प्रात:काल के सूर्य का प्रकाश प्रवेश करने से वह दृश्य बड़ा ही सुन्दर सुहावना जान पड़ता है। खिड़की के पास बहुत-से जिल्ददार रजिस्टर और कागज़-पत्र लेकर टेबिल के सामने सुरेन्द्रनाथ बैठा था। वसूल, बाक़ी, जमा-खर्च, बन्दोबस्त, मामले-मुक़द्दमे वग़ैरह की सब नत्थियाँ और फ़ाइलें वह एक-एक करके उलट-पलटकर देख रहा था। यह सब देखना-सुनना एक तरह से आवश्यक भी हो गया था। साथ ही

यह वक्त काटने का एक सिलसिला भी था। इसके लिए शान्ति के साथ उसे बहुत कुछ झगड़ा भी करना पड़ा था। वह उसे कुछ भी काम नहीं करने देना चाहती थी। बड़ी मुश्किल से, बड़ी बहस करने के बाद सुरेन्द्र शान्ति को यह समझा पाया था कि अक्षरों की ओर देखने से ही आदमी के हृदय की पीड़ा बढ़ नहीं जाती, अथवा उसी दम उसे सहारा देकर वहाँ से बाहर ले जाने की ज़रूरत नहीं होती। मजबूर होकर शान्ति ने यह बात मान ली, और वह इस काम में आवश्यकता के अनुसार स्वामी की सहायता भी करती रहती है।

आजकल स्वामी के ऊपर शान्ति का पूरा ज़ोर है—पूरा अधिकार है। उसकी एक भी बात को सुरेन्द्र नहीं टालता। असल में सुरेन्द्र ने कभी बात टालकर शान्ति को दुखी नहीं किया। बीच में केवल कुछ अभागे बदमाश यार मिलकर शान्ति को बड़ा दुःख पहुँचा रहे थे। आजकल स्त्री के कड़े हुक्म से सुरेन्द्र का बाहर की मरदानी बैठक तक जाना भी बन्द हो गया है। शान्ति ने डाक्टर साहब की सलाह और उपदेश का प्राणपण से पालन करने की ठीक-ठीक तैयारी कर रक्खी है।

इस समय शान्ति स्वामी के पास बैठी हुई लाल फ़ीते से कागज़ों के बण्डल बाँध-बाँधकर रख रही थी। सुरेन्द्र ने एक कागज़ देखते-देखते सिर उठाकर सहसा पुकारा—शान्ति!

शान्ति अभी उठकर कहीं गई थी। दम भर बाद लौट कर उसने पूछा—"क्या मुझे पुकार रहे थे?"—"हाँ। मैं ज़रा बाहर दफ़्तर में जाना चाहता हूँ।"

"नहीं। बताओ, क्या चाहिए, मैं मँगाये देती हूँ।" "कुछ चाहिए नहीं, मैं ज़रा मैनेजर बाबू से मिलूँगा।" "तो मैं उन्हें यहीं बुलवा लूँगी—तुम क्यों जाते हो। मगर इस समय उनसे क्या काम है?" "यही कहना है कि अबकी पहली तारीख़ से उनको जवाब दे दिया जायगा; अब उनकी ज़रूरत नहीं।"

सुनकर शान्ति को बड़ा विस्मय हुआ। लेकिन प्रसन्नता भी कम नहीं हुई। उसने सन्तुष्ट होकर पूछा—मैनेजर का अपराध?

"अपराध उन्होंने क्या किया है, यह तो कुछ अभी मैं ठीक-ठीक बता नहीं सकूँगा; लेकिन वे बड़ी 'अति' कर रहे हैं।" इसके उपरान्त अदालत का सर्टिफ़िकेट और अन्य कई काग़ज़-पत्र दिखाकर कहा—यह देखो, गोलागाँव में रहने-वाली एक बेवा, बेवारिस औरत का घर-द्वार, ज़मीन-जायदाद सब कुछ उसने नीलाम में दूसरे नाम से ख़रीद लिया है! मुझसे इस बारे में एक बार पूछा भी नहीं।

शान्ति ने दुःखित होकर कहा—आह, बेवारिस बेवा के ऊपर यह ज़ुल्म किया गया है! यह काम तो अच्छा नहीं हुआ। अच्छा, यह तो बताओ, उस विधवा की जायदाद नीलाम क्यों हुई?

"उसके ज़िम्मे दस वर्ष का लगान बाक़ी था। सूद और असल जोड़कर पन्द्रह सौ रुपयों की नालिश हुई थी।"

रुपये बाक़ी होने की बात सुनकर शान्ति के मन में मथुरानाथ के प्रति क्रोध और विरोध का भाव कुछ कम हो चला। उसने मृदु मन्द मुसकान के साथ कहा—तो फिर इसमें मैनेजर बाबू का क्या दोष है? इतने रुपये वे छोड़ भी तो न सकते थे।

सुरेन्द्रनाथ अन्यमनस्क होकर मन में कुछ सोचने लगा। शान्ति ने इसी सिलसिले में फिर पूछा—तुम क्या इतने रुपये, सब के सब, छोड़ देना चाहते हो? छोड़ दोगे?

"छोड़ न दूँगा तो और क्या करूँगा? एक बेचारी बेवारिस बेवा का घर-बार हथिया कर उसको क्या निकाल बाहर करूँगा? तुम्हारी क्या यही राय है?

उत्तेजना-पूर्ण हृदय से निकले हुए ये व्यङ्ग-वाक्य शान्ति के हृदय में बिंध गये। व्याकुल, व्यथित, दुःखित और लज्जित होकर उसने कहा—नहीं, कभी नहीं। मैं उस विधवा-वधू को घर से निकाल बाहर करने की सलाह कभी नहीं दे सकती। इसके सिवा तुम अपने रुपये अगर किसी को दे डालो तो उसमें मैं क्यों बाधा डालूँगी?

सुरेन्द्र ने अबकी हँसकर कहा—"यह बात नहीं है शान्ति। मेरे रुपये क्या तुम्हारे नहीं हैं? मेरा और तुम्हारा क्या अलग-अलग है? अच्छा, जब मैं नहीं रहूँगा तब

तुम—"(घबराकर) "यह क्या कहते हो—चुप तो रहो—"
"और कुछ नहीं शान्ति, मैं यही पूछता हूँ कि तुम वे काम करोगी न, जिन्हें मैं पसन्द करता हूँ—बोलो?"

शान्ति रोने लगी। क्योंकि उसे विश्वास था कि स्वामी की तन्दुरुस्ती ठीक नहीं है। उसने कहा—"तुम ऐसी बातें क्यों किया करते हो भला?" "मुझे अच्छी लगती हैं, इसी से। अच्छा शान्ति, मेरी साध, मेरी इच्छा क्या है, यह क्या तुम नहीं जान रक्खोगी?"

शान्ति ने आँचल से आँसू पोंछते हुए सिर हिलाकर सम्मति जताई।

थोड़ी देर बाद सुरेन्द्र ने फिर कहा—"मेरी बड़ी दीदी का नाम—" शान्ति ने आँखों से आँचल हटाकर सुरेन्द्र की ओर देखा।

सुरेन्द्र ने काग़ज़ दिखाकर कहा—"यह देखो बड़ी दीदी का नाम।" "कहाँ है?" "यह देखो, लिखा है—माधवी देवी। उन्हीं का घर-बार नीलाम करा लिया गया है।"

पल भर में शान्ति ने सारा रहस्य समझ लिया। उसने कहा—इसी से शायद तुम उन्हें सब सम्पत्ति फेर देना चाहते हो?

सुरेन्द्र ने मुसकिराकर उत्तर दिया—हाँ, यही बात है। उनका जो कुछ होगा वह सब अवश्य फेर दूँगा—सब कुछ—रत्ती-रत्ती—

माधवी का प्रसङ्ग उपस्थित होने से शान्ति मन में कुछ दुःखित हो उठी। शायद उसके मन में माधवी के प्रति कुछ ईर्षा का बीज अज्ञात रूप से था।—

शान्ति ने कहा—"वह शायद तुम्हारी बड़ी दीदी नहीं हैं। केवल माधवी नाम है। नाम ही से तो यह—" "तो क्या बड़ी दीदी के नाम का थोड़ा-सा सम्मान न करूँ?" "सम्मान करो, लेकिन वे तो उस सम्मान का हाल कुछ भी न जान पावेंगी।" "वे न जान पावेंगी, यह ठीक है। मगर मैं क्यों न सम्मान करूँ? मैं किस तरह असम्मान कर सकता हूँ?" "नाम की कहो, तो यही नाम न जाने कितनी स्त्रियों का होगा।" "अच्छा, तुम क्या दुर्गाजी का नाम लिखकर उसके ऊपर पैर रख सकती हो भला?"

"राम-राम! यह क्या कहते हो? देवी-देवतों के नाम के बारे में—"

सुरेन्द्र हँसने लगा। बोला—अच्छा, देवी-देवतों का नाम जाने दो। मैं तुमको पाँच हज़ार रुपये दूँगा, अगर तुम एक काम कर दो।

शान्ति ने प्रसन्न होकर कहा—कौन सा काम?

दीवार में सुरेन्द्र की एक तसवीर लगी हुई थी। उसे दिखाकर सुरेन्द्र ने कहा—इस तसवीर को तुम अगर—

"क्या?"

"इसे अगर चार ब्राह्मणों के द्वारा नदी के किनारे जला—"

समीप ही वज्रपात होने से जैसे आदमी के शरीर का सारा खून पहले पल भर में देह भर से सिमट कर गायब-सा हो जाता है, मुँह साँप के डसे रोगी का-सा नीले रङ्ग का हो जाता है, वही हालत शान्ति की भी पहले हो गई। उसके उपरान्त धीरे-धीरे कुछ-कुछ होश-हवास दुरुस्त होने पर करुण-दृष्टि से स्वामी के मुख की ओर देखकर वह चुपचाप नीचे उतर गई। शान्ति ने उसी दम पुरोहित को बुलवाकर विधि-पूर्वक शान्ति-स्वस्त्ययन की व्यवस्था करके, तरह-तरह की मन्नतें मानकर, मन में प्रतिज्ञा कर ली कि यह बड़ी दीदी चाहे जो हों, इनके बारे में अब मैं कोई बात मुँह से नहीं निकालूँगी। फिर कोठरी के भीतर से किवाड़े बन्द करके बहुत देर तक बैठे-बैठे आँसू बहाती रही। इस ज़िन्दगी में आज तक ऐसी कड़वी, कठोर बात कभी उसने नहीं सुनी थी।

सुरेन्द्र भी इधर कुछ देर तक चुपचाप बैठा रहा—फिर उठकर बाहर चला गया। दफ़्तर में मैनेजर से मुलाक़ात हुई। पहले ही सुरेन्द्र ने यह प्रश्न किया—"गोलागाँव मौजे में किसकी जायदाद नीलाम हुई है?" "मृत रामतनु सान्याल की विधवा पतोहू की।" "क्यों?" "दस साल से मालगुज़ारी नहीं वसूल हुई थी।" "कहाँ है खाता? लाइए, देखूँ तो।"

मथुरा बाबू पहले तो इस असम्भव अविश्वास-सूचक आदेश को सुनकर अकचका गये। मगर उसी दम सँभल

कर उत्तर दिया—खाते वग़ैरह और और काग़ज़ात सब पबने में ही हैं। वहाँ से लाये नहीं गये।

"अच्छा तो अभी लाने के लिए आदमी भेजो। क्या तुमने उस बेवारिस बेवा ब्राह्मणी के बैठने तक के लिए ज़रा सी जगह नहीं रहने दी?" "शायद नहीं है।" "तो वह कहाँ रहेगी?"

साहस सञ्चय करके मैनेजर ने कहा—"रहने की जगह क्यों नहीं है, वह अब तक जहाँ रहती थी वहीं जाकर रहेगी।" "अब तक कहाँ रहती थी?" "कलकत्ते में, अपने बाप के घर।" "उसके पिता का नाम क्या है?" "ब्रजलाल लाहिड़ी।" "और, उस विधवा का नाम?" "माधवी देवी।"

सिर झुकाये सुरेन्द्रनाथ उसी जगह बैठ गये। मालिक का रंग-ढंग देखा तो मैनेजर घबरा उठा। उसने पूछा—"क्या हुआ? क्या बात है? कैसी तबियत है?" सुरेन्द्र ने इन प्रश्नों का कुछ उत्तर न देकर एक नौकर को पुकारा। उसके आने पर हुक्म दिया—जल्दी साईस से एक अच्छे घोड़े को ज़ीन कसकर सवारी के लिए तैयार करने को कहो।—यहाँ से गोलागाँव कितनी दूर है? मैं इसी वक्त वहाँ जाना चाहता हूँ।

"कोई दस कोस के फ़ासले पर है मालिक।" (घड़ी देखकर) "अभी नव बजे हैं; एक बजे तक तो शायद पहुँच जाऊँगा।"

घोड़ा आया। सुरेन्द्र ने उस पर बैठकर पूछा—"किधर जाना होगा?" "पहले उत्तर की ओर जाकर फिर पश्चिम की ओर सीधी राह है।"

सुरेन्द्र ने घोड़े को चाबुक मारा। वह चौकड़ी भरता हुआ दौड़ चला।

इधर यह सब हाल सुनते ही शान्ति बेहाल हो गई। ठाकुरद्वारे में जाकर ठाकुरजी के आगे उसने इतना सिर पटका कि खून निकलने लगा। वह बारम्बार कहने लगी—हे ठाकुरजी, हे नारायण, तुम्हारी यही इच्छा थी? तुमको यही मंजूर था? क्या मेरे हृदयदेव फिर लौटेंगे? क्या मैं फिर उनके दर्शन पाऊँगी?

उधर दो सिपाही घोड़े दौड़ाते हुए गोलागाँव की ओर तेज़ी के साथ चल दिये। खिड़की से उनको जाते देखकर शान्ति को कुछ ढाढ़स हुआ। वह बारम्बार आँसू पोंछती हुई कहने लगी—मैया, दुर्गा माता! मैं तुम्हें दो भैंसे चढ़ाऊँगी—अपनी छाती का रक्त चढ़ाऊँगी—जितना चाहो, हे माता दुर्गा, जितना चाहो—जब तक तुम्हारी तृप्ति न हो, प्यास न मिटे, तब तक—उतना ही—हृदय का रक्त तुम्हें पिलाऊँगी—मेरी मनोकामना पूरी करना।

गोलागाँव अभी दो कोस दूर था। घोड़े के खुरों तक मुँह का फेन बह-बहकर पहुँच गया था। घोड़ा धूल उड़ाता,

नाले-नालियाँ नाँघता, गढ़े नाँघता तेज़ चाल से चला जा रहा था। उसने जल्दी जाने की कोशिश में जान लड़ा दी थी। सिर के ऊपर ग्रीष्मकाल के विकराल सूर्य प्रचण्ड रूप रखकर तप रहे थे।

घोड़े पर बैठे ही बैठे सुरेन्द्र का जी मतलाने लगा। जान पड़ने लगा, जैसे पेट के भीतर की हर एक नाड़ी-नस बाहर ही निकल पड़ेगी। दम भर के बाद दो-तीन बार थोड़ा-थोड़ा ख़ून चौहों की राह से बह-बहकर बाहर धुले हुए, पर धूलि-धूसरित हो रहे, कुर्ते के ऊपर गिर गया। सुरेन्द्र ने हथेली से मुँह का ख़ून पोंछ डाला। एक बजे के पहले ही सुरेन्द्र का घोड़ा गोलागाँव में पहुँच गया। सड़क के किनारे, दूकान पर बैठे हुए, दूकानदार से पूछा—"यही गोलागाँव है न?" "जी हाँ, यही है।" "रामतनु सान्याल का घर किधर है?" "उधर, उस तरफ़ जाइए—"

उँगली उठाकर उस आदमी ने जिधर बताया उधर सुरेन्द्र ने फिर घोड़े को दौड़ाया। कुछ मिनटों में ही घोड़ा सान्याल बाबू के घर पर, बाहरी बैठक के सामने, जा खड़ा हुआ।

द्वार पर एक सिपाही बैठा था। मालिक को अचानक ऐसे समय देख उसने उठकर वन्दना की।

"घर के भीतर कौन है?" "जी कोई नहीं है।" "कोई नहीं? जो मुसम्मात रहती थीं, सो कहाँ गईं?" "वे तो सबेरे हो किराये की नाव पर बैठकर कहीं चली

गई।" "कहाँ? किधर? किस राह से?" "इधर दक्षिण की ओर नाव गई है उनकी मालिक।" "नदी के किनारे-किनारे राह है? घोड़ा दौड़ाने भर की जगह होगी?"

"ठीक नहीं कह सकता। शायद नहीं है।"

फिर घोड़ा दौड़ा दिया। दो कोस के लगभग जाने पर आगे राह नहीं देख पड़ी। घोड़े का चलना असम्भव हो गया। तब घोड़े को वहीं छोड़कर सुरेन्द्र पैदल ही आगे बढ़ा। एक बार देखा, कुर्ते पर कई एक ख़ून के क़तरे जम गये हैं, और होंठों से उस समय भी रक्त-स्राव होता जा रहा है। नदी के किनारे जाकर उसने अञ्जलि भर-भर कर कई बार पानी पिया, मुँह धोया। इसके बाद फिर पूरी शक्ति से दौड़ लगाकर आगे बढ़ा। इस समय पैरों में जूते भी न थे। सारे शरीर में कीचड़ और धूल, और उसमें भी बीच-बीच में जगह-जगह रुधिर के दाग़ दिखाई दे रहे थे। छाती के ऊपर तो जैसे किसी ने ख़ून की पिचकारी ही मारी थी।

दिन ढल चला। पैर अब नहीं उठते। जैसे उसने अबकी बार सोने को मिलते ही फिर सदा के लिए सो जाने का विचार कर लिया है, और इसी से अन्तिम शय्या पर जीवन के चिर-विश्राम की आशा से उन्मत्त की तरह अविराम गति से दौड़ा चला जा रहा है। इस शरीर में जितनी शक्ति है, वह सब बिना किसी संकोच के ख़र्च करने के बाद अन्तिम शय्या का आश्रय लेना है, फिर कभी नहीं उठेगा!

वह नदी के उस मोड़ के पास—एक नाव ही तो है न? लटक रहे कलमी साग के झुरमुट को हटाती हुई आगे बढ़ने के लिए राह साफ़ करती जा रही है—वह—वह—हाँ, हाँ, नाव ही है—वही नाव है। सुरेन्द्र ने पुकारा—"बड़ी दीदी!" गला सूख रहा था; आवाज़ तो निकली नहीं—कई क़तरे ख़ून के बाहर निकल पड़े।

फिर पुकारा—"बड़ी दीदी!" फिर वही हाल हुआ—ख़ून निकला।

कलमी साग का झुरमुट नाव की राह रोक रहा था, इस लिए इसी बीच में सुरेन्द्र उसके पास पहुँच गया।

फिर पुकारा—बड़ी दीदी!

दिन भर के उपवास और मानसिक दुःख-कष्ट के कारण माधवी मुर्दा-सी होकर, नाव के भीतर सो रहे सन्तोषकुमार के पास, आँखें मूँदे पड़ी थी। सहसा "बड़ी दीदी" की पुकार उसको सुन पड़ी। यह पुराने परिचित स्वर में कौन पुकार रहा है! हाँ, वही स्वर तो है! माधवी उठकर बैठ गई। बाहर सिर निकालकर देखा, मास्टर साहब ही तो जान पड़ते हैं ये! सारा शरीर धूल और कीचड़ में लथपथ हो रहा है!

माधवी ने दासी को पुकारकर कहा—ओ नयना की माँ! सुनती है, माँझी से कह दे, जल्दी नाव रोक ले—यहीं पर लगा दे।

उस समय सुरेन्द्र में तनिक भी ताब नहीं थी। वह वहीं किनारे पर धीरे-धीरे हाथ-पैर फैलाकर लेट गया। सब मिल-कर पकड़कर सुरेन्द्र को नाव पर उठा लाये। मुँह और आँखों में पानी के छींटे मारकर होश में लाने की कोशिश की जाने लगी। एक माँझी सुरेन्द्र को पहचानता था। उसने कहा—"यह तो लालतागाँव के ज़मींदार बाबू हैं!" माधवी ने इष्टकवच सहित अपने गले का सोने का हार निकालकर माँझी के हाथ में दिया, और कहा—इसी रात को लालता-गाँव पहुँचा दे सकते हो? मैं सबको ऐसा ही एक-एक हार इनाम में दूँगी।

सोने का हार देखकर तीन ताक़तवर जवान माँझी उसी दम गुन (रस्सी) लेकर पानी में उतर पड़े। उन्होंने कहा—माँजी, रात चाँदनी है। इसलिए हम सबेरा होते-होते ज़रूर पहुँचा देंगे।

सन्ध्या हो जाने के बाद सुरेन्द्र को होश हुआ। आँखें खोलकर वह माधवी के मुँह की ओर देखने लगा। इस समय माधवी के चेहरे पर घूँघट न था। केवल मत्थे का कुछ हिस्सा आँचल से ढका हुआ था। वह गोद में सुरेन्द्र का सिर रक्खे बैठी थी।

कुछ देर ताकते रहने के बाद सुरेन्द्र ने कहा—तुम मेरी बड़ी दीदी हो न?

माधवी ने आँचल से सुरेन्द्र के होंठ में लगे ख़ून को अच्छी तरह पोंछकर अपनी आँखें पोंछना शुरू किया।

"तुम बड़ी दीदी हो ?"

"मैं माधवी हूँ।"

सुरेन्द्र ने आँखें मूँदकर धीरे-धीरे कहा—आह! वही तो।

दुनिया भर की शान्ति और सुख जैसे उसी गोद में छिपा हुआ था। इतने दिनों बाद सुरेन्द्र ने उस शान्ति और सुख को आज खोज पाया है। इसी से रक्तरञ्जित होठों के कोने में हँसी की रेखा भी फूट उठी है। सुरेन्द्र ने कहा—बड़ी दीदी, बड़ा कष्ट है!

नाव तेज़ी के साथ चली जा रही है। भीतर सुरेन्द्र के चेहरे पर चन्द्रमा की किरणें आकर पड़ रही हैं। दासी एक टूटा पंखा लेकर धीरे-धीरे हवा कर रही है। सुरेन्द्रनाथ ने धीरे-धीरे पूछा—कहाँ जा रही थीं तुम ?

माधवी ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—प्रमीला की सुसराल।

सुरेन्द्र ने कहा—छिः! इस तरह कहीं कोई नातेदार के घर जाता है दीदी ?

१०

अपने घर में, अपने सोने के कमरे में, बड़ी दीदी की गोद में सिर रक्खे सुरेन्द्रनाथ इस समय मृत्यु-शय्या पर पड़ा है। दोनों पैरों को गोद में रक्खे शान्ति अपने आँसुओं से धो रही है। पबने में जितने डाक्टर और वैद्यराज थे, सब मिलकर बहुत कोशिश और परिश्रम करके भी खून नहीं बन्द कर

पाते। पाँच वर्ष पहले का वही पुराना घाव आज लगातार खून उगल रहा है।

हम माधवी के हृदय की बात खोल कर कह नहीं सकेंगे। हम खुद भी अच्छी तरह उसे नहीं जानते। जान पड़ता है, इस समय उसे पाँच वर्ष पहले की बात याद आ रही है। उसने सुरेन्द्र को अपने घर से निकाल दिया था। फिर लौटा नहीं सकी। लेकिन पाँच वर्ष के बाद सुरेन्द्रनाथ उसको लौटाने आया है।

सन्ध्या के उपरान्त उज्ज्वल दीपक के प्रकाश में सुरेन्द्रनाथ ने माधवी के मुँह की ओर देखा। पैरों के पास शान्ति बैठी है। कहीं वह न सुन ले, इसी लिए हाथ से माधवी के मुँह को अपने मुँह के पास लाकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—बड़ी दीदी, क्या तुम्हें उस दिन की याद आती है, जिस दिन तुमने मुझे निकाल दिया था? मैंने उसी का बदला लिया—तुमको भी निकाल दिया। क्यों, बदला पूरा-पूरा ले लिया कि नहीं?

माधवी बेहोश-सी हो गई। उसका सिर झुककर सुरेन्द्र के कन्धे के पास आ गया। जिस समय उसे होश हुआ उस समय घर में रोने-धोने का हाहाकार मचा हुआ था।